अनुयोगाचार्य पन्यास श्री १०८ न्याय विजयजी गणिवर्य

आपने पूज्य आचाय श्री १००८ समुद्र सूरिश्वरजी महाराज साहेब की अखण्ड सेवा मे रहकर अनेक मन्दिरो की प्रतिष्ठा एव साधु साध्वियो को योगोद्वहन कराये। आप आचार्य श्री के प्रथम प्रमुख शिष्य रत्न है। हाल ही मे आपने पटोदा एव मडावर नगर मे अंजन शलाका (पच कल्याणक) एव प्रतिष्ठाँ बडे समारोह पूर्वक कराई। जयपुर मे इस वर्ष भी आपका ही चातुर्मास है तथा आपकी निश्रा मे ही पर्युपण पर्व की आराधना सम्पन्न हो रही है।

मणिभद्र

वार्षिक | मुख पत्र

बीसवां पुष्प — वि० संवत् २०३५

कार्यालय : आत्मानन्द सभा भवन, घी वालों का रास्ता, जयपुर-302003 (राजस्थान)

संघ की प्रवृतियां व संचालन :

- ❀ श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ मन्दिर
  (सर्वाधिक प्राचीन भव्य देरासर)
- ❀ श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ उपाश्रय
- ❀ श्री आत्मानन्द जैन सभा भवन
  (उपासना केन्द्र)
- ❀ श्री आत्मानन्द जैन धार्मिक पाठशाला
- ❀ श्री जैन श्वे० मित्र मण्डल पुस्तकालय
- ❀ श्री वर्धमान आयम्बिल शाला
- ❀ श्री सुमति ज्ञान भण्डार
  (हस्तलिखित एवं अन्य ग्रन्थ संग्रहालय)
- ❀ श्री जैन कला चित्र दीर्घा
  (भव्य चित्र, मूर्ति एव जैन संस्कृति दर्शन)
- ❀ मणिभद्र प्रकाशन
  (वार्षिक मुख-पत्र)
- ❀ श्री उद्योग शाला
  (सिलाई-बुनाई प्रशिक्षण-केन्द्र)

प्रकाशक

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ
आत्मानन्द सभा भवन
घी वालों का रास्ता,
जयपुर-3

जगद्गुरु का अष्टक-राग हरिगीत

श्री तपागच्छ पवित्र गगने, सूर्य सम सूरीश्वरा ।
श्री विजयदान सूरीशपट्टे, शोभियाजे गुण धरा ।
जे जैन। शासन स्तम्भ रूपे, राजता आ भूतले ।
ते हीर सूरीश्वर जगत् गुरुने, नमन हो अवनीतले ॥१॥

जे धर्म धोरी मुनी गणना, पण हता महोटा मणि ।
जे पच महाव्रत पालता, जग जीवने निज सम गणि ।
उपदेश अमृत पूर जेनो, जगत माही जलहिले ॥ते०॥२॥

जे देव गुरुवर धर्मना, शुद्ध पथ ने देखाडता ।
आ विश्वमा उपकार करता, कर्म मलने गालता ॥
गुणीअल गुरुजी विचर्या, उपकार करवा भूतले ॥ते०॥३॥

दिल्ली पति अकबर नरेश ने, बोध आपी रीझव्यो ।
तत्वों जणावीने अहिंसा, स्तम्भ रोपी जे गयो ।
आ आशमा आसु भराता, जे जडे नहीं भूतले ॥ते०॥४॥

श्री वीर प्रभु वावी गया, जे दयारूपी वेलडी ।
जल सीची सीची हेम सूरिए, वेगथी कीधी वडी ।
ते म्लेच्छना साम्राज्य मा, खीलावी खते वीरले ॥ते०॥५॥

निज पाटने दीपाववा, सुयोग्य जाण्या ज्ञानथी ।
श्री विजय सेन सूरीशने, निज पाट सोप्यो मानथी ।
आयु विताबी ज गया छ स्वर्ग सुन्दर भूतले ॥ते०॥६॥

श्री जैन शासन तत्व भासन, सिद्ध सेन दीवाकरा ।
श्री वज्र के देवेन्द्र सूरि, हेम जेवा साक्षरा ।
श्री हीरला सम हीर पण, चाल्या जाता आसुढले ॥ते०॥७॥

भाद्र शुदि एकादशी दिन, नगर उन्नत भूमि ने ।
त्यागी गया स्वर्ग रह्य, त्या नमन करीये आपने ।
चरित्र, दर्शन, ज्ञान, न्याय, वधार्या निशदिन भूतले ।
ते हीरसूरि सम्राट बोधक, विजयताभ शवनितले ॥ते०॥८॥
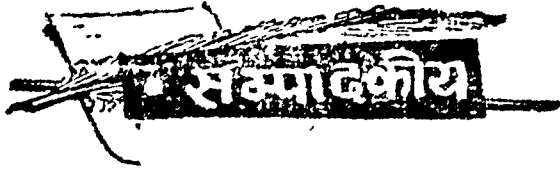
श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर के मुख पत्र का २० वां पुष्प आ
सेवा में प्रस्तुत करते हुये हमें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

हमारी हार्दिक इच्छा यह रहती है कि जो पुष्प आपके कर कमलों में अर्पण कि
जावे उसकी सौरभ दिन प्रतिदिन महकती रहे और उसके प्रकाशन में प्रति वर्ष निख
आवे। इस सम्बन्ध में हमारा प्रयत्न सतत जारी है परन्तु उसका मूल्यांकन करना पाठक ग
के हाथ है।

समाज का मुख पत्र एक सजग प्रहरी का कार्य करता है। इसमें जहाँ संघ
उपलब्धियों पर प्रकाश डाला जाता है वहाँ अगर कोई कमियां हो या समाज के लि
हितकारी सुझाव हो तो उन्हें भी समाज के सामने निश्पक्ष रूप से प्रस्तुत करना हमा
परम पुनित कर्तव्य हो जाता है। इन्हीं तथ्यों पर विचार कर हमने लेखकों के उद्‌गार
विचारों का निश्पक्ष होकर उधृत करने की कोशीश की है चाहे वें विचार हमारे या संघ
विचारों से मेल भी नहीं खाते हो। कहीं-कहीं लेखकों के विचारों मैं उग्रता भी है लेकि
यह हमारी दृढ़ मान्यता है कि वें भी समाज को अत्यन्त फला फूलता देखना चाहते हैं
अतः उनके विचारों को सुनना भी हमारा कर्त्तव्य हो जाता है। कोई भी राष्ट्र सम
अथवा धर्म तभी उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है जव उसमें पूर्ण एकता हो। अ
आज हमारे समाज में भी पूर्ण एकता की परम आवश्यकता है। इसी दृष्टिकोण को म
नजर रखते हुये 'समाज के' प्रत्येक सदस्य को चाहिये कि वे ऐसी कोई वात न करे जिस
समाज में विग्रह उत्पन्न हो तथा अपनी जवान से ऐसी कोई वात न कहे जिससे किसी
दुःख हो और फिर वह कालान्तर में द्वेष का कारण बन जावे। समाज के इस मुख प
द्वारा हम समाज की स्थाई एकता की शुभ कामना करते हैं।

मणिभद्र के सुचारू रूप से चलाने में जिन-जिन साधु भगवन्तों, लेखकगणों ए
विज्ञापन दाताओं आदि का सहयोग रहा उनके भी हम अत्यन्त आभारी है।

सम्पादकगण

विचार—कण
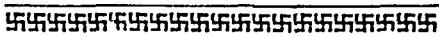
सग्रहकर्त्ता
मगवानजी भाई वीरपाल शाह

१. मनुष्य के लिए जीवन मे सफलता का रहस्य हर आने वाले अवसर के लिये तैयार रहना हैं।
—डिजराइली

२ आपत्तियाँ मनुष्यता की कसौटी हैं, बिना इन पर खरा उतरे कोई सफल नही हो सकता
—सूक्ति

३ आलस्य ही मनुष्य के शरीर मे रहने वाला सबसे बडा शत्रु हैं। उद्यम के समान मनुष्य का कोई बंधु नहीं है। जिस के करने से मनुष्य दुखी नहीं होता।
—सूक्ति

४ इतिहास के अनुभवों से हम सबक नहीं लेते इसलिये इतिहास की पुनरावृति होती है।
—विनोबा

५ दो वर्ष तक भेड की तरह जीने की अपेक्षा दो दिन तक शेर की तरह जीना ज्यादा बेहतर है।
—टीपू सुलतान

६. छुआछूत का त्याग अहिंसा का एक महानतम प्रभाव है।
—गांधीजी

तीर्थंकर–पद पामीअे रे

कीधां कर्म निकंदवारे, लेवा मुक्ति नो दान,
हत्या पातिक छुटवारे, नहीं कोई तप समान रे
भविक जन ! तप करजो मन शुद्ध ।

उत्तम तपना योग थीरे, सेवे सुरनर पाय,
लब्धि अट्ठावीस उपजेरे, मन वांछित फल थाय....।।२।।

तीर्थंकर पद पामीअे रे, नासे सघला रोग,
रूप–लीला सुख साहबीरे, लहीये तप संजोग रे....।।३।।

अष्ट कर्मना समूह ने रे, तप टाले तत्काल,
अवसर पामी अेहनोरे, खप करजो उजमाल रे....।।४।।

अेवुं [शु छे जगत मांरे, तप थी जे नहिं होय,
जे जे मन में इच्छी येरे, सहजे फले सहि तेह....।।५।।

बाह्य-अभ्यन्तर बे कह्यांरे, तप ना बार प्रकार,
हो जो तेनी चालमांरे, जेम धन्नो अणगार....।।६।।

उदय रत्न कहे तप थकी रे, वाधे सुजस सुनुर,
स्वर्ग होय घर आंगणु रे, दुर्गति जाये दूर रे....।।७।।

'ज्ञानमेव बुधाः प्राटुः कर्मणां तपनात्तपः' । कर्मो को तपावे वह तप कहाता है । गाढ कर्मो को भी तप अग्नि के समान तपाकर भस्मीभूत कर देता है । महापुरुषों ने तत्व से ज्ञान को तप सदृश्य बतलाया है, इसी कारण अभ्यन्तर तप को मुख्य मानने में आता है । अनशन आदि बाह्य तप अभ्यन्तर तप को पुष्ट बनाने वाला है । बाह्य तप की आचरणा बिना अभ्यन्तर तप में स्थिरता नहीं आती, इसीसे श्री तीर्थंकर परमात्मा अपने निर्मल अवधि ज्ञान द्वारा यह जानने पर भी कि इसी भव में वे मुक्ति को प्राप्त करेंगे, बाह्य तप का आचरण अत्यन्त आदर पूर्वक करते हैं । अतः अनशनादि तप का अत्यन्त महत्व साबित होता है ।

आ० श्री कलापूर्ण सूरीश्वरजी

जीवन लक्ष्य

—मुनि श्री वीरसेन विजय

तुकारामजी का एक शिष्य था। उसका नाम था—गंगाराम। उसकी पहचान तुकारामजी को विचित्र रीति से हुई थी।

एक दिन तुकाराम गांव छोड़कर भडारा के पर्वतमाला की ओर जा रहे थे। रात दिन हरि-कीर्तन करते थे। लोगों के बीच बैठने से प्रभु के पास शान्ति से बैठने को नहीं मिलता था। यहां पर्वत पर एकान्त में बैठे थे।

गंगाराम वहां आकर पूछने लगा—"क्या तुमने मेरी भैंस देखी है?"

"मैंने तो नहीं देखी।" तुकाराम ने जवाब दिया।

"तो फिर यहां पर बाबा के समान किसलिये बैठा है? यहां से गई हो तो तूने अवश्य देखी होगी।"

तुकाराम क्या जवाब दे? मन में सोचने लगे—तेरी भैंस देखने के लिए ही यहां आया होता तो देखूं। इसके लिए गांव की जंजाल का त्याग क्यों करूं?

"अरे वाह! तिलक किए हुए तुम तो भगत या साधु बाबा लगते हो। तुम्हारा नाम क्या है?" गंगाराम थोड़ी देर के बाद बोला।

"तुकाराम।"

"हे तुकाराम! तुम्हारा नाम तो बहुत बार सुना है।" उसने नमस्कार किया और पुनः वही बात दुहरायी—"तुम तो अतीन्द्रिय ज्ञानी हो। बोलो मेरी भैंस मिलेगी या नहीं?"

गंगाराम पर हंसने की जरूरत नहीं है, क्योंकि भैंस ही उसका आधार थी, इसलिये उत्सुकता तो होगी ही। तुकाराम ने प्रश्न किया—"तेरा नाम क्या है?"

'गंगाराम।"

"तेरी उम्र कितनी है?"

'पैंतालीस साल।"

"तेरी भैंस खोने पर तू इतना दुःखी हुआ, लेकिन तेरी पैंतालीस साल की उम्र खा जाने पर भी तुझे चिंता नहीं होती है? तू किस तरह जीया, उसका विचार भी किया है? तू मंदिर भी जाता होगा, कभी-कभी भजन में भी जाता होगा। तू नास्तिक नहीं है, लेकिन तेरी जीवन धारणा क्या है? तेरी जीवन निष्ठा क्या है? तेरा जीवन किसलिये है? इन सब प्रश्नों के जवाब तेरी बुद्धि में नहीं आये हैं" गंगाराम से तुकारामजी ने १५ मिनट तक बातें की और तब से गंगाराम का जीवन ही पलट गया, वह साधक बनकर जीवन विकास के लिये प्रयत्नवान बन गया।

आपने कितनी तपश्चर्या और पूजा की यह प्रश्न इतना महत्वपूर्ण नहीं है, लेकिन आपका आध्यात्मिक विकास कितना हुआ और कौन-सी दृष्टि से आपने जीवन-यापन किया, यह बात महत्व की है।
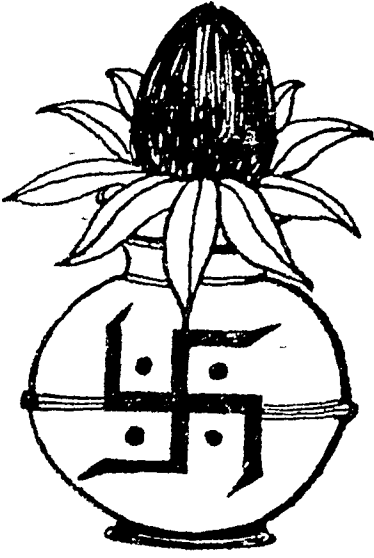
खामेमि सव्व जीवे, सव्वे जीवा खमंतु में ।
मित्ती में सव्वा भूअेसु, वेरं मज्झ न केणई ।।

सर्व जीवों को मै खमाता हूँ और सर्व जीव मेरे अपराध को क्षमा करे । मेरा सर्व जोवों के साथ मैत्री भाव है। किसी के भी साथ वैर भाव नही है ।

क्षमापना हमारे मन की गांठे वैर विरोध मिटा कर हृदय में पवित्रता का संचार करता है । हम संवत्सरी प्रतिक्रमण करते है उस समय हमारी एक एक गलतियों को याद कर सब से क्षमा याचना करते है । प्रतिक्रमण का विधान ही ऐसा है कि वहां ऊंच नीच या बडे छोटे का भेद भाव नही है । आसन वस्त्र आदि करीब करोब समान से ही होते । यह क्षमापना हमारे क्षमापना पर्व की मौलिकता को गौरव शाली बनाते हैं । क्षमापना के पर्व के अनुयायियों को चन्दन की तरह शीतल एवं सुवासित होना चाहिए। कुल्हाडी चन्दन के वृक्ष को काटती हैं परन्तु चन्दन कुल्हाडी को सुगन्ध से सुवासित करता है । हमारी क्षमापना रत्न जड़ित नूपुरों की तरह होनी चाहिए जिसको सुनने में मधुर हो और देखने में सुन्दर हो । अगर सच्चे हृदय से क्षमापन के गुण को विकसित किया जाय तो धिरे धिरे अनेक गुणों का विकास अपने आप हो जायेगा । जैसे सुवासित फूलों के बगीचे के पास एक अन्धेरी बदबु भरी कोठरी हैं और अगर उसकी एक खिड़की खोल दी जावे तो अन्धेरे की जगह प्रकाश एवं बदबु को जगह सुमधुर सुवासिता सुगन्ध से कमरा महक उठेगा । इसो तरह आत्मा की कोठरी में क्षमापन रूपी खिड़की खोल दी जाय तो हमारे कर्मो के बादल धीरे धीरे छूट कर हमारे

आत्मा को शुद्ध स्वरूपी बना देती हैं। और हमारा भव भ्रमण का रास्ता धीरे धीरे सिकुड कर छोटा होता जाता हैं ।

चन्द्र रूद्राचार्य के शिष्य जिसका लग्न उसी दिन हुआ था और उसी दिन जबर दस्ती दिक्षा दी गई परन्तु गुरु पर कोई आफत नही आवे इसलिए गुरु को अनुनय विनय कर रातोरात वहा मे चलने के लिए राजी करता हैं । गुरु को अपने कन्धे पर बिठा कर उबड खाबड रास्ते से जाता हैं। जहा गुरु को हिचकोले आते हैं। वहा उसे गुरु डडा मारता हैं परन्तु वह महान सहनशील आत्मा हृदय मे पश्चाताप करता हैं कि मेरे कारण गुरु को कितनी तकलीफ हो रही हैं। वह भावो की उच्च श्रेणी मे चढता जाता हैं और क्षमा रूपी जल मे उसकी आत्मा धूलती जाती हैं और कुछ ही समय मे उसे केवल ज्ञान रूपी अमूल्य रत्न की प्राप्ति हो जाती है। गुरु ने भी सच्चे हृदय मे क्षमापना की तो उसे भी केवल ज्ञान प्राप्त हो गया ।

आज हम अपने क्षमापना के महान दर्शन को भूलकर मनमाने ढग से आधुनिकता के टाचे मे ढालने का प्रयत्न करते हैं। इससे रत्नमय नूपुर की आभा, मधुरता आदि खोकर लोह श्रृ खला की कर्कश आवाज की कोलाहल पैदा करने के प्रयत्न मे जुटे हुए हैं। आजकल हम क्षमा मागते हैं वह ऊपरी ऊपरी ही लगती है। अगर समाज मे सच्चे हृदय से क्षमापन का गुण विकसित हुआ हो तो समाज एकता के सूत्र मे बधता नजर आवे। क्षमापना का पर्व आध्यात्मिक है न कि दिखावटी जलसा मात्र। क्षमापना मागने या देने के लिए फोटो खिचवाने की या माला पहनने या पहनाने की आवश्यकता नही पडनी चाहिए। कभी-कभी संभ्रात व्यक्ति उच्च आसन पर बैठ कर या गद्दी पर बैठकर बडे समारोह के साथ नीचे बैठी हुई जनता से क्षमा मागते हैं तो ऐसा लगता है कि क्षमापना के पवित्र पर्व की मौलिकता का हमारे तुच्छ फायदे के लिए हनन किया जा रहा है। अगर हम अपने सा धार्मिक बन्धू के दु ख दर्द मे सहायक नही हो सकते हैं और अपने तुच्छ फायदे के लिए मत्री, राज्यनेता या राज्य के उच्च कर्मचारी से मधुर सम्बन्ध बनाने के लिए क्षमापना के महान आध्यात्मिक पर्व की आड लेते हैं तो यह हमारा दुर्भाग्य ही कहा जायेगा।

हमे क्षमापना के पर्व की दिव्यता एव पवित्रता को अक्षुण्ण रखना है। हमे मन की कलुषिता मिटानी है। हमारे मन मे अपने साधार्मिक भाई के प्रति वो प्रेम की सलीला बहनी चाहिए कि उनके दु ख दर्द को मिटाने मे हम तत्पर रहे। क्षमापना के समारोह में भी राग द्वेष का धुआ उठता हो तो वह क्षमापना विडम्बना मात्र है।

आत्मालोक का पर्व

—ले० आ० श्री इन्द्रदीन्न सुरी महाराज

पयुर्षण पर्व जैन संस्कृति का एक महान पर्व है । यह पर्व बारह मास सुप्त मानवों को जागृत करता है। जिसके आगमन की पूर्व वेला में ही जैन समाज में एक जागृति की लहर दौड़ जाती है, जो केवल वृद्धो एवं युवा तक ही सीमित न होकर, बच्चों तथा बालिकाओं में भी उत्साह, उमंग और उल्लास का संचार कर देती है।

प्रत्येक पर्व की अपनी अपनी गरिमा अपना-अपना महत्व होता है। पर इस पर्व की अपनी अलग विशेषता है : अपनी महत्ता है ? यह आसक्ति का नही–अनासक्ति का, राग का नहीं–त्याग का, भोग का नही–योग का संदेश लेकर आता है।

यह पर्व आत्मा की प्रसुप्त शक्तियो को उद्घाटित करता है। आत्मा चेतना पर आवृत परतों को अनावृत्त करता है।

पर्वो की दो धाराएँ है। शारीरिक सीमा तक रहने वाले पर्वो को लौकिक पर्व कहा जाता है। वह शरीर की सीमाओ मे ही बंद रहता है, शरीर में स्थित चेतनामय ज्योति तक वह पहुँच नहीं पाता। लौकिक पर्व मानव के शरीर का ही पोषण करता है, मन और आत्मा का नही। अतः वे शारीरिक क्षुधा की तृप्ति करते है, पर आत्मतृप्ति नही कर सकते।

दूसरी धारा है लोकोत्तर पर्वो की जो जीवन को सही दिशा प्रदान करते हैं। आत्मा को उन्नति की ओर ले जाते हैं। आत्मोन्नयन की परिकल्पनाये उसकी सानिध्यता मे ही साकार होती हैं ! यह लोकोत्तर पर्व शरीर की सीमाओं से परे हो, दिव्य चेतना को जागृत कर आत्मप्रिय, आत्मरत बनाते हैं। जिसमे शरीर का शोषण होता है पर आत्मा का तो पोषण ही होता है। शरीर भौतिक पदार्थो पर अवलम्बित है। अत: उसकी सुरक्षा हेतु भौतिक पदार्थो की आवश्यकता रहती है। पर आत्मा एक दिव्य ज्योतिमय चेतना है। उसे तो तप, त्याग, संयम, वैराग्य, रूप भोजन की आवश्यकता रहती है। यही भोजन पर्वों के माध्यम से आत्मा को विशेष रूप से उपलब्ध होता है ! यही कारण है कि लोग भौतिक भोजन का परित्याग कर आध्यात्मिक भोजन-ग्रहण करते हैं। जिससे आत्मा तुष्ट-पुष्ट होती है। लोकोत्तर पर्वों का यही का लक्ष्य होता है। मानव की आत्मा जागृत हो, पावन हो, शुद्ध हो बुद्ध हो।

इस महापर्व के कुछ विशेष कर्त्तव्य है। शास्त्र श्रवण-यथाशक्ति, तपस्या, अभयदान, संघभक्ति, क्षमापना ये प्रत्येक कर्त्तव्य विशेष रूप से करने चाहिए। इसमें भी क्षमापना तो होनी चाहिए। यदि जीवन में से वैर-विरोध कटुता समाप्त नहीं होती, क्षमा भाव से आत्मा आप्लावित नहीं होती, तो वह इस महापर्व की आराधना के लाभ से वंचित रह जाता है। ज्ञानियों के शब्दों मे यदि वह क्षमा,

प्रेम के जल से मनो मालिन्य को स्वच्छ नही करता, पवित्र नहीं करता तो वह पर्व का आराधक नहीं विराधक है।

'क्षमा खड्ग करे यस्य दुर्जन किं करिस्यति ।
अतृणे पतितो वह्नि स्वयमेवोप्यु शाम्यति ॥"

क्षमा वही कर सकता है जिसमे सामर्थ्य है, क्षमता हैं। यह क्षमता है, सहिष्णुता। जब तक सहिष्णुता की शक्ति नही आती क्षमाभाव आना असम्भव है। भगवान महावीर की क्षमा हमारे लिए एक आदर्श है। क्षमा के प्रतिक्षे से आध्यात्मिक साहित्य की एक घटना परिपूर्ण है। परम कारूणिक क्षमामूर्ति भगवान महावीर स्वामी जी के जीवन की एक घटना यहा प्रस्तुत है।

महाश्रमण भगवान महावीर एकान्त वन मे आत्मलीन थे। बाह्य जग से विमुख थे अन्तंजगत मे विचरण कर रहे थे। अत बाह्य सबंध से मुक्त वे आत्मा मे सबंध स्थापित किए हुए थे। इतन मे एक ग्वाला अपने बैलो के साथ वहाँ आया। भगवान को ध्यानस्थ खडे देखकर बोला महात्मन्! मैं गांव जाकर लौटता हूँ, पुन आगमन तक बैलों का ध्यान रखना। महावीर भगवान, साधना मे लीन थे। वे पर का ध्यान कैसे रखते? बैल भी अपनी मस्ती मे चरते-चरते दूर जगल की नदी के तट तक चले गये। सध्या-होते-होते वहाँ ग्वाला आया। बैल न देखकर उसने महावीर से पूछा कि बैल कहाँ है? बाहर तथा अन्तर से मौन वे क्या बोलते। महावीर को मौन देख ग्वाले ने सोचा यह तो बडा पाखण्डी मालूम देता है। इधर-उधर बैलो की बहुत ही खोज की। रातभर जगल मे बैलों की खोज करते-करते थक कर चूर हो गया प्रा त प्रभु के निकट पहुँचा तो वहीं पर वह बैल बैठे दिखाई दिए। वह ग्वाला क्रोध मे लाल हो उठा यह तो बडा ढोंगी है। मालूम होते हुए भी इसने बैल नही बताए। चोर कही का! और वह बैलो के बांधने की रस्सी लेकर महावीर स्वामी पर टूट पड़ा। कुसुम-सी कोमल देह पर निर्मम रस्सियो का प्रहार। प्रहार पर प्रहार फिर भी प्रशात एव प्रसन्न भाव से उस अज्ञानी ग्वाले की मन ही मन आत्म शांति की प्रभु कामना कर रहे थे। तो यह है 'क्षमा' सामर्थ्य से अधिक होने पर भी सहनशीलता रखना यही तो क्षमा का आदर्श है।

क्षमा का महात्म्य है। पर्युषण के पावन पर्व के प्रसग पर आत्म निर्मलता हेतु अधिकाधिक पुरूषार्थ करें।

इसी में आत्मा का हित है, मगल है, कल्याण है।

श्री नमस्कार महामन्त्र मे सर्व द्रव्यो का स्वरूप है, ससार और मोक्ष का गणित है, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, प्रकटाने की पद्धति है, धर्म की कथा है, इस प्रकार सर्व अनुयोग नवकार में हैं।

(नमस्कार चिंतामणि—पृष्ठ ६६)

२५० वर्ष श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ मन्दिर

जयपुर नगर की स्थापना के साथ निर्मित स्थापत्य कला का सुन्दर प्रतीक श्री सुमतिजिन प्रासाद नामक भव्य देरासर का शिलान्यास विक्रम सं० १७८३ में संपन्न हुआ। जयपुर नगर के विकास और भविष्य की उज्ज्वलता के आधार पर इस भव्य देरासर में देवाधिदेव श्री श्री १००८ श्री धर्मनाथ भगवान की भव्य प्रतिमा की मूलनायक तरीके से स्थापना सम्वत् १७८४ में (वेदी प्रतिष्ठा) हुई।

इस मन्दिर के अधिष्ठायक प्रकट प्रभावी श्री मणिभद्रजी दर्शकों की मनोकामना पूर्ण करने में सहायभूत रहे। शासन देवी की भी प्रतिभा अत्यन्त चमत्कारी है। शासन की प्रभावना में आपका सहयोग परिपूर्ण रहा और इस भव्य देरासर की दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की होती रही। समय-समय पर गीतार्थ आचार्यों का उपाध्याय, भगवन्त साधु मुनिराजों, 'साध्वी मण्डलों का आगम भी जयपुर में निरन्तर होता रहा।

वि० सम्वत् १८३८ में तपागच्छाधिपति जैनाचार्य श्री भद् विजयसिंह सूरीश्वरजी के पटानुपाट पर जैनाचार्य श्रीभद् विजय धर्म सूरी महाराज साहब के सानिध्य में मुनिराज श्री पुण्य विजयजी महाराज साहब के कर कमलों द्वारा १६४२ की प्रतिष्ठित ५वें तीर्थंकर श्री श्री १००८ श्री सुमतिनाथ भगवान की प्रतिमा की स्थापना (वेदी प्रतिष्ठा) जैठ सुदी १० गुरुवार विक्रम सं० १८३८ मे मुलनायक के रूप में प्रतिष्ठा हुई। प्राचीन मूलनायक धर्मनाथ भगवान की प्रतिमा आजभी-सुमतिनाथ भगवान के गंभारे में विराजमान है। मूलगंभारे के बहार : दो सुनहरी कार्य में परिपूर्ण-पट्ट है। एक शत्रुंजय तथा अष्टापदजी का तथा दूसरा समेत शिखर व नदीश्वरद्वीप का यह सुन्दर आरस मकराने के पट्ट पर बहुरंगी कार्य किया हुआ है। पंचपरमेष्ठी के पास गिरनार तीर्थ का सुन्दर मकराने का बहुरंगी कार्य से युक्त पट्ट है।

भमती (फेरी) प्रदिक्षणा मे जैन कला चित्र दीर्घा है जिसमें भारतवर्ष के विभिन्न तीर्थों के चित्र लगाये गये हैं। इसमे सुनहरी कार्य युक्त हाथ की कलम से बनाये गये अनेक चित्र विद्यमान हैं। विशेषकर पण्डित भगवान जैन द्वारा भेंट जंबुदीप का नक्शा-तथा जैन भूगोल व समरसरण का एवं सिद्ध चक्रमा पट्ट अपनी कलाकारी को आज भी संजोए रख रहा है।

प्रदिक्षणा के बाहर श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा सम्वत् १८८३ में प्रतिष्ठित कराई गई। विक्रम सम्वत् १९९३ में वैसाख सुद ३ बुधवार को बीशस्थानक के पट्ट की प्रतिष्ठा श्रीमान विजयसिंह जी केसरीसिंह जी पालेचा की तरफ से यतिवर्य श्री श्यामलाल जी महाराज के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुई। मूल गंभारे के रंग मण्डल के ऊपर गुम्बज मे कांच का तथा चित्रों का बहुत सुन्दर कार्य हुआ है। वह भी अति प्राचीन है। परियां प्रभु भक्ति में अपने आपको लयलीन मुद्रा में दिखाई

दे रही है मानो देवलोक की याद को स्मरण कर रही हों। परियों के नीचे बाइसवें तीर्थंकर नेमीनाथ भगवन्त का पूरा जीवन-चरित्र चित्रों में बताया गया है। जिसमें बाल्यकाल, पाणिग्रहण की तैयारियाँ, नेमजी की जान व दीक्षा कल्याणक तथा केवल ज्ञान कल्याणक व मोक्ष कल्याणक गिरनार पर्वत पर राजुल की गुफा आदि के बहुरंगी चित्र हैं। सभी स्थानों पर सुनहरी कार्य है जो इस रंग मंडप की शोभा पर चार चाँद लगाये हुये है।

छोटी चवरी में केसरियानाथ की १८ इंची भव्य सम्प्रति कालीन प्रतिमा है। साथ ही शान्तिनाथ भगवान की पीतपाषाण की मनोहर प्रतिमा तथा सुपार्श्वनाथ भगवन्त की मनमोहक प्रतिमा बिराजमान है तथा ५ इन्च केसरियानाथ जी की प्रतिमाजी विराजित हैं। इसमें देहरी ऊपर तथा स्थम्भो में सुन्दर कार्य किया गया है। ऊपर सामने के तरफ २४ तीर्थंकर तथा यक्ष यक्षणी की माटी रंगीन सुधा युक्त कार्य है। जो अर्वाचीन है।

विक्रम सम्वत् १९९३ में प्रकट प्रभावी कलिकाल कल्प तरु सिद्धचक्र (नवपद) जी के पाषाण के पट्ट की प्रतिष्ठा जैनाचार्य श्रीजिन हरी सागर सूरीश्वरजी महाराज साहब के कर कमलों द्वारा श्रीमान सागरमलजी, सरदारमल जी एवम् सिरहमल जी सचेती की तरफ से वैसाख बुदी शनिवार १९९३ में हुई।

सम्वत् १९९५ में सम्राट अकबर प्रतिबोधक जगद् गुरुदेव श्रीमद्‌विजय हीर सूरीश्वर जी महाराज साहब, अनन्त लब्धिनिधानाय श्री गौतम स्वामी भगवन्त की प्रतिमा तथा चरण पादुका की स्थापना सम्वत् २००१ में वैसाख सुदी ३ को हुई।

विक्रम सम्वत् २०१० में तीर्थाधिराज शत्रु जय महातीर्थ के पाषाण पट्ट की स्थापना मुनि श्री दर्शन विजय जी त्रिपुटी के कर कमलों द्वारा फाल्गुन वदी ३ बुधवार को प्रतिष्ठा श्रीमान् कपिल भाई केशवलाल शाह की तरफ से हुई। इसी दिन शासन देवी श्री (महाकाली देवी) की प्रतिष्ठा भी त्रिपुटी जी के कर कमलों द्वारा हुई।

गणिवर्य श्री दर्शन सागर जी महाराज के उपदेश से शान्तिनाथ भगवान तथा मुनिसुव्रत स्वामी की १५ इंच प्रतिमा की स्थापना हुई। शान्तिनाथ भगवान की प्रतिष्ठा श्री सूरजमल जी वैद के आत्मश्रेयार्थ श्री बुद्धसिंह जी हीराचन्द जी वैद की तरफ से तथा मुनिसुव्रत स्वामी भगवान की प्रतिमा श्री कपिल भाई केशव लाल जी शाह की तरफ से आषाढ सुदी ३ गुरुवार सम्वत् २०२२ में हुई।

जय वर्द्धन पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिष्ठा सम्वत् २०२८ आषाढ़ सुद ? रविवार को मेवाड़ रत्न राजस्थान दिवाकर मुनि श्री विलास विजय जी तथा राजशेखर विजय जी महाराज के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुई। साथ ही साथ सांवलिया पार्श्वनाथ भगवान की भी प्रतिष्ठा इसी दिन हुई। इसी वर्ष मगसर वद ५ को सम्राट अकबर प्रतिबोधक जगद् गुरुदेव दादा विजय हीर सूरीश्वर जी महाराज की प्रतिमा की प्रतिष्ठा श्रीमान हीराभाई एन शाह मंगल चन्द गुप्त की तरफ से हुई तथा न्यायाम्बिद तपागच्छ गगन दिवाकर जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्द सूरी महाराज की प्रतिमा

बाबूलाल जी तरसेम कुमार पंजाबी की तरफ से मुनि श्री विशाल विजय जी महाराज के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुई।

विक्रम सम्वत् २०२६ में वर्धमान तपोनिष्ठ पन्यास प्रवर भानु विजय जी महाराज के कर कमलों द्वारा महावीर स्वामी आदि–१३ जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा मगसर बद ६ शुक्रवार सम्बत् २०२६ में हुई। जो मन्दिर के तीसरे मंजिल पर नूतन देरासर कक्ष का निर्माण करने पर हुई। २५००वें भगवान महावीर के निर्वाण कल्याणक के रूप में महान् उपलब्धि पूज्य पन्यासप्रवर विशाल विजयजी महाराज के उपदेश से प्राप्त हुई। भगवान महावीर के जीवन चित्र बहुरंगी नूतन कक्ष (महावीर भगवान) के ऊपर मंजिल में हुये जिसका उद्घाटन सेठ श्री कस्तूर भाई लाल भाई के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

सम्वत् २०३२ में पूज्य मुनिराज श्री प्रीती विजद जी तरुण विजय जी महाराज, प्रभावक प्रवचनकार पूज्य मुनिराज कलाप्रभ विजयजी महाराज साहब के कर कमलों द्वारा–भगवान महावीर की वेदी के आजू बाजू में बनी वेदी मे ५-५ प्रतिमाओ की प्रतिष्ठा मगसर सुदी १० को लूनावत परिवार की ओर से तथा एक वेदी की श्रीसंघ की तरफ से हुई।

आज इस भव्य देरासर को २५० वर्ष परिपूर्ण हो चुके हैं जिसमें अनेक प्रकार से इस भव्य देरासर को और भी अधिक सुन्दरकारी कराया जा रहा है।

शासनदेव से भविष्य में शासन की प्रभावना के कार्य कराते रहें, ऐसी ही विनती है।

—०—

अमूल्य क्षण

—मुनिश्री वीरसेन विजय

दस हजार रुपये की कीमत का एक रेडियम का टुकड़ा (पीस) एक बार प्रयोगशाला से खो गया। चार दिन बाद जब उसकी आवश्यकता महसूस हुई तब ज्ञात हुआ कि जहाँ रखना था वहाँ नहीं रखा और नये नौकर ने भूल से पस्ती की टोकरी में डाल दिया।

संयोगवश दूसरी पस्ती के साथ इस पस्ती के कागज कागज की मिल में पहुँच गये। वहाँ निरीक्षण हेतु गये तो कागज का ढेर देखा जो बहुत बड़ा था। इस ढेर में से रेडियम का टुकड़ा निकालने का खर्च आया नौ हजार रुपये।

अपनी अमूल्य जिन्दगी के क्षण ऐसे ही बेदरकारी से प्रमाद से पस्ती के ढेर में तो नहीं चले जाते न? वह रेडियम का टुकड़ा तो मिल जायगा, खरीद सकेंगे, शोधकर मिला देंगे लेकिन प्रमाद की टोकरी में गिरा हुआ एक भी क्षण वापस न आयगा, न मिलेगा।

भगवान महावीर का अपरिग्रह सदेश

—साध्वी निर्मलाश्री-एम० ए०, साहित्यरत्न

इस ससार मे प्रत्येक मनुष्य या प्राणीमात्र सुख की कामना करता है। वह सुख के लिये असीम प्रयत्न करता है। सुख की प्राप्ति के लिये हमारे इतने प्रयत्न होने पर भी हमें सुख क्यो नही मिलता ? इसका यही कारण है कि सुख कहाँ है ? हम नही जानते। कई एक मनुष्य धन सचय मे सुख समझते हैं। कई सत्ता मे सुख समझते हैं। इस प्रकार मानव बाह्यवस्तुओ मे सुख की खोज करता है।

हमारे सुख का झरना धन और सत्ता में नही है। सुख का निर्मल जल तो अपने हृदय मे ही होता है। सुख वस्तु-निष्ठ नही, विचार-निष्ठ है। किन्तु भौतिकवाद के इस युग मे प्राय प्रत्येक मनुष्य ऐसी लालसाओ मे फसा हुआ पाया जाता है। मनुष्य तृष्णाओं के दावानल मे अपनी आत्मा होमता रहता है और दु खो को झेलता है। पर कभी भी किसी मनुष्य की ऐसी आशाए पूरी नही हो पाती हैं।

कान्ता और कनक परिग्रह के मूल केन्द्र हैं। सग्रह-वृत्ति, पू जीवाद आज के सभी पापों के जनक हैं। मनुष्य चाहे जितने छोटे-बड़े व्रत नियम करे, पर सग्रह वृत्ति पर नियन्त्रण न रखे तो वह सही अर्थ मे अपना विकास नही कर सकता। आजका मानव कमजोर है। लाभ हो रहा है तो लोभ का शिकार बन रहा है। लक्षाधिपति कोटयाधीश बनना चाहते हैं और कोट्याधीश अब्जपति बनना चाहते हैं। उनकी आशाओ का कोई अन्त नही है। लोग यह समझते हैं कि सुख धन से मिलता है कि तु शेक्सपीयर ने ठीक ही कहा है—Gold is worse poison to man s souls, doing more murders in this loathsome world, than any mortal drug

मनुष्य की आत्मा के लिए सुवर्ण निकृष्ट विष है, इस दु खपूर्ण दुनिया में अन्य विषोसे धनका विष अधिक रक्त बहाने वाला है। ससार मे जो धन है, वह परिमित है, अनन्त नहीं है और मनुष्य की इच्छाए आकाश के समान अनन्त हैं। ऐसी स्थिति मे परिमित धन से अपरिमित अकांक्षाए किस प्रकार पूर्ण हो सकती है ? इस प्रकार पैसा सुख के बदले दु ख ही बढ़ाता है।

भगवान महावीर ने कहा है—परिग्रह पाप है और अपरिग्रह धर्म है। लोभ हमारे जीवन का भयकर से भयकर शत्रु है। मनुष्य मे हजारो अवगुण हो, चाहे न हो, लेकिन एक दुर्गुण लोभ ही हमारे जीवन म आ जाए तो समझ लेना चाहिये कि हमारा पतन करने के लिये, दुर्गति मे लेजाने के लिए, दुनिया मे बर्बाद करने के लिए सब कुछ आ गया। जब मनुष्य क्रोध करता है तब प्रेम का नाश करता है, अभिमान आने पर नम्रता का और माया से मित्रता का, किन्तु लोभ की बारी आई तो शास्त्रकारो ने कहा—'लोहो सव्व विणासणो" लोभ सबका नाश करता है; अन्य अवगुण एक-एक सद्गुण का नाश करता है, कि तु लोभ सब गुणो का नाश करता है। लोभ के जागृत होने पर न प्रेम, न विनय और न शिष्टता ही रहती है।

आज जो सारा संसार दुःखी है, आर्थिक विषमता फैली हुई है, युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का विरोध कर रहा है, समाज में, परिवार में और राष्ट्र में जो हाहाकार चारों ओर सुनाई पड़ता है, मात्र इसी लोभवृत्ति का परिणाम है।

मनुष्य वासनाओं का गुलाम होता है, वह दूसरों को भी इनका गुलाम बना देता है। जिसके पास सम्पत्ति और सत्ता न हो, वह उसे पशु-तुल्य समझता है। अन्याय और हिंसा से जो चीजें इकट्ठी की जाती है, उनसे हमारी बुद्धि ही नहीं बिगड़ती, किन्तु जिसके पास भी वे जाती है उसकी बुद्धि भी बिगड़ जाती है, लाभ तो उनसे कुछ होता ही नहीं है।

आज भूख की समस्या बड़ी विकट है। लाखों लोगों को अन्न मिल नहीं रहा है। उसका कारण अनावश्यक संचयवृत्ति ही है। यदि सभी मनुष्य अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार ही वस्तुओं का संचय करें और अनावश्यक संग्रह को समाज के उन दूसरे व्यक्तियों को सौंप दें, जिनको उनकी आवश्यकता है तो आज दुनिया में जितनी अशांति मची हुई है उतनी न रहे, और सम्पत्ति के बंटवारे का जो प्रश्न आज दुनिया के सामने उपस्थित है, वह बिना किसी कानून के स्वयं ही बहुत कुछ अंशों में हल हो जाये। आज के गरीब भारत का प्रश्न इतना विकट है कि गांव का एक व्यक्ति बीमार होता है तो वह एक रोज की भी दवा नहीं ले सकता है। दवा ले तो पैसा कहाँ और आराम करे तो खावे क्या? आज इन्हीं गांवों पर सारा हिन्दुस्तान निभ रहा है वे सबको खिला-खिलाकर जीवनदान देते है, पर क्या उनको भी कोई जीवनदान देता है? आज सारी दुनिया में ही विषमता ने अपना घर कर लिया है। आज एक तरफ तो एक मानव मेवा-मिष्टान्न खाता है, पर दूसरे ओर दूसरे को चने भी खाने को नहीं मिल रहे हैं।

परिग्रह इन पापों की जड़ है। जब तक जड़ को उखाड़ा नहीं जाएगा, तब तक डाल फूल-पत्तें को उखाड़ा नहीं जा सकता है। अतः हर एक मनुष्य को परिग्रह पर सर्वप्रथम नियन्त्रण करना चाहिये। तभी वह दूसरे पापो से छुटकारा पा सकता है। महाराष्ट्र के सन्त तुकाराम ने अपरिग्रह सम्बन्ध में कितना अच्छा कहा है--"तुका म्हणे धन आम्हां गोमांसा समान' आवश्यकता से अधिक धन गोमांस की तरह त्यागना चाहिये। भगवान महावीर ने कहा है—'महापरिग्रही को धर्म का स्पर्श नहीं होता। अठारह पापों में परिग्रह बड़ा पाप है। अन्य सत्रह पाप करने वाला तो उनका फल स्वयं ही भोगता है और अपने साथ ही उन पापों का बोझा ले जाता है. परन्तु परिग्रह के पाप का सेवन करने वाला अपने सिर पर तो इसका बोझा ले जाता ही है, पर मरने के बाद अपनी संतानों के लिये भी उसका पाप छोड़ जाता है। अतः परिग्रह के प्रति आदरभाव होना ही अनर्थ का मूल है।

यदि यह सोचा जाए कि प्रामाणिकता से पैसा इकट्ठा करने में क्या पाप है? यह सच है कि प्रामाणिकता से पैसा पैदा करने में अनीति के पाप से बचा जा सकता है, परन्तु परिग्रह के पाप से नहीं बचा जा सकता है। अतः प्रामाणिकता और सत्य का आश्रय लेकर भी आवश्यकता से अधिक रखना परिग्रह ही है। जड़ वस्तुओं के अधिक संग्रह से मनुष्य की आत्मा दब जाती है और उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, अतः आत्म-विकास के लिये अपरिग्रहव्रत की विशेष आवश्यकता है।

सूक्ष्मदृष्टि से ज्ञात होता है कि परिग्रह बाह्यजगत का पदार्थ नहीं, किन्तु अन्तर्जगत का एक तत्त्व है। वह एक विचार है, पर शुद्ध नहीं, मलिन विचार है उसे मनका विकार भी कह सकते हैं।

भगवान महावीर ने वास्तविक परिग्रह तो किसी भी पदार्थ पर मूर्छा या आसक्ति का रखना बतलाया है। जैसे—"मूर्छा परिग्रह" दशवैकालिक सूत्र में कि केवल वस्त्रादि बाह्यवस्तुओं को परिग्रह नहीं कहा है किंतु 'यह वस्तु मेरी है' इस तरह का जो ममत्वभाव रहता है, उस ममत्व को भी परिग्रह कहा है। जब तक हृदय मे अनावश्यक धन प्राप्ति की कामना और ममता दूर न हो तब तक परिग्रही होते है। धनवान अपना धन तिजोरी में रखते हैं गरीब का मूर्छा रूप धन उसके हृदय में रहता। यदि बाहरी चीजो को ही परिग्रह माना जायगा तो जिन असख्य लोगो के पास कुछ भी नही है, किन्तु उनके चित्त म बडी-बडी आकाक्षाए हैं वे सब अपरिग्रही कहलायेंगे, लेकिन ऐसी बात नहीं है। सच्चा अपरिग्रही वही है जिसके पास अनावश्यक कुछ भी नही है और न जिसके चित में अनावश्यक किसी चीज की चाह ही है। कारण चाह होने पर मनुष्य परिग्रह सचय किये बिना नही रह सकता और सचयवृत्ति आने पर न्याय, अन्याय और उचित-अनुचित का विचार नही रहता। वह धन का स्वामी न होकर उसका दास हो जाता है। महात्मा गांधी ने 'मगल प्रभात' मे लिखा है कि "वस्तुओ की तरह विचारो का भी अपरिग्रह होना चाहिये।" अपरिग्रहवाद की सबसे पहली मांग है—'इच्छा निरोध की', इच्छा-निरोध नहीं हुआ, तो तृष्णा का अन्त नहीं होता, अत इच्छाओं पर विजय प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि इच्छा परिमाण व्रत को अपनाया जाए। सतोष का आविर्भाव इच्छाओ पर विजय प्राप्त करने पर होता है।

किन्तु आश्चर्य है कि आज मानव परिग्रह वृद्धिमे ही अपनी प्रतिष्ठा समझता है। आज हिंसक सम्माननीय नही होता, असत्यभाषी विश्वसनीय नहीं बनता, दुराचारी समाज मे प्रतिष्ठा नही पाता, चोर दण्डनीय माना जाता है। इस प्रकार अन्य सभी व्रतो का भग करनेवाला समाज म अपनी प्रतिष्ठा खो देता है किन्तु अपरिग्रहव्रत का भग करनेवाला या अमर्यादित धन सचय करने वाला सम्मानित होता है। परिग्रह का पापी अपने आपको पापी नही समझता और उस पाप के लिये लज्जित भी नही होता। जान पडता है इस पाप को पाप नहीं मान रखा है। परिग्रह के प्रति आदरभाव होना ही अनर्थ का मूल है। आश्चय की बात यह है कि जो जितना बडा परिग्रही है, वह उतना ही पुण्यशाली समझा जाता है।

अपरिग्रहभाव जैनधर्म का मूलप्राण है। अहिंसा सत्यादिकी साधना के लिये अपरिग्रह व्रत की आवश्यकता है। अपरिग्रहमूलक सामाजिक व्यवस्था पूर्णरूपेण अहिंसात्मक होती है। अपरिग्रहवाद को भुलाकर अहिंसा की साधना विडम्बनामात्र है। जहां परिगह है, वहाँ शोषण है, उत्पीडन है, हिंसा है। जहा अपरिग्रह है, वहीं अहिंसा है। आत्मोन्नति के इच्छुक साधकों का परिग्रह के विविध स्वरूपों को जानकर बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह से मुक्त होनेका प्रयत्न करना चाहिये। परिग्रह के कारण आत्मविकासका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, अत आत्मविकास के लिये भी अपरिग्रह की विशेष आवश्यकता है। अपरिग्रह का सिद्धान्त समाजमे शान्ति उत्पन्न करना है। परिग्रह से अपरिग्रह की ओर बढना—यह धर्म है।

आज पर्वाधिराज पर्युषण के पुनीत पर्व पर भगवान महावीर के इस सदेश को अपनाकर जीवन में शान्ति लाभ करें—यही मगल कामना।

भेद का दुःख

प्रवचनकर्त्ता–परम् पूज्य आ. वि. सूर्योदय सूरीश्वरजी म. सा.
अवतरणकर्त्ता : मुनिश्री भुवनहर्ष विजयजी और अमृतलाल वखारीया

प. पू. उपाध्याय श्री सकलचंद जी महाराज फरमाते है कि—पूज्य श्री कपडवंज के चतुर्मास के समय उपाश्रय में काउसग्ग ध्यान मे थे। उपाश्रय के बगल मे एक कुम्हार रहता था। उसके गधे ने ढ़ेंचुँ-ढ़ेंचुँ करना शुरू कर दिया। पूज्य श्री ने सोचा कि जब तक यह गधा ढ़ेंचुँ-ढ़ेंचुँ करता रहेगा, तब तक वे काउसग्ग में स्थिर रहेंगे। काउसग्ग के ध्यान में पूज्य श्री ने नंदीश्वरद्वीप तथा देवताओं को वहाँ पूजा करते देखा। उसी स्थान पर इस दृश्य को देखने के बाद पूज्यश्री ने सत्तरभेदी पूजा की रचना की।

किसी भी समय जब दुःस्वप्न या अशुभ विचार मन में आवें तो महापुरुषो की बनाई हुई सज्झायें, गुणगान तथा कीर्ति करते हुए अशुभ विचार दूर हो जाते है।

जिनेश्वर देवों की पूजा करने से उपसर्गो का नाश होता है। हृदय प्रसन्नता अनुभव करता है। हृदय की प्रसन्नता ही सुख है और हृदय की अप्रसन्नता ही दुःख है, यह सब मन के विचारों पर आधीन है। यदि भगवान की पूजा करते हुए प्रसन्नता नहीं होती है, तो इसे आपको अपने मन की कमी समझना चाहिए। एक कवि ने कहा है कि—यदि हृदय प्रसन्न होता है, तो पूजा का फल प्राप्त होता है। पूजा अखंडित होती है। यदि अपने को अखंडित पूजा करनी है तो हृदय की प्रसन्नता को रखना आवश्यक है, उसी से पूजा का फल प्राप्त होगा।

तीनो लोको के स्वामी प्रतिवासुदेव महाराज रावण जब वाली मुनिश्री के पास से यह सुनते है कि अष्टापद गिरि की महिमा बहुत है तथा जो जीव अष्टापद गिरि की यात्रा करता है तो वह जीव अवश्य मोक्ष को पाता है। यह सुनकर राजा रावण अपनी पटरानी के साथ वहाँ गये और अष्ट प्रकार की पूजा करते हैं। वे भावपूर्वक पूजा करने के लिए संगीत सहित नृत्य करते हैं। नृत्य धीरे-धीरे तेज गति को प्राप्त होने लगा। राजा रावण वीणा बजा रहे थे। जब नृत्य और सगीत में तेजी होती है, तो स्नायु खिचते हैं। परन्तु उनका मन तो प्रभु-भक्ति मे लगा हुआ था। उसी समय वीणा का एक तार टूट गया, परन्तु राजा रावण कोई साधारण व्यक्ति नही थे। उन्होने अपनी एक नस खींच डाली; क्योंकि वे वीणा के तार टूट जाने से नृत्य में भंग होने देना नहीं चाहते थे। उन्होने बहुत जल्दी से उस नस को वीणा के तार मे जोड़ दिया और नृत्य मे थोड़ा भी भंग न पड़ा। इसी कारण राजा रावण ने तीर्थङ्कर पद पाया। यह तो केवल पूजा का ही प्रभाव था।

सुनो भाईयों! मै यह सब कहकर आपको पूजा की कसम दिलाना नही चाहता हूँ। मुझे तो कसमें देने की ही कसम है। कसम का दूसरा अर्थ होता है—पीड़ा या कष्ट। इसलिए मैं आपको कष्ट देना नही चाहता हूँ, लेकिन यदि आपको इस संसार की पीड़ा से छुटकारा प्राप्त करना हो तो कसम लेना।

इसके पश्चात् पू उपाध्यायजी महाराज ने समझाते हुए कहा है कि—हे जीव ! तू तो मानसरोवर के उच्च कुल के हंस के समान है । वह मोती का चारा चरता है । वैसा ही तू है । अरे, मोती को चरने का अवसर तो किसी भाग्यशाली को ही मिलता है । हे ! उत्तम कुल के हंस, जरा, तू इस संसार के स्वरूप को तो देख । इस संसार में दुःखों से छूटने का प्रयास तो कर। कोई कहता है कि कम नहीं है, स्वर्ग नहीं है और नरक भी नहीं है, लेकिन अस्पतालों में जाकर आप देखिए तो सही कि हर खाट पर घूमने से आठों कर्म बोलते हुए दिखाई देते हैं । यदि आपको कोई दुःख न हुआ हो तो आप सावधानी रखना । यह तो तुम्हारा कोई विशेष पुण्य है कि तुम्हें इतने सारे रोगों के होने के बावजूद भी कोई रोग नहीं हुआ है । मनुष्य जीव पाकर हमने बहुत कुछ गवाया है । महापुरुषों ने कहा है कि मनुष्य जन्म को सुधारने और सँवारने का प्रयास करना चाहिए । जगत के जीवों के प्रति अभेद बनना चाहिए अर्थात् भेद भाव नहीं रखना चाहिए । यही एक अच्छा प्रयास है । इसी पर आधारित एक कहानी प्रस्तुत है—

एक गाँव है । वह गाँव बहुत सुन्दर है, पर तु उस गाँव में दरिद्रता वर्षों से छाई हुई है । उस गाँव मे एक परिवार रहता था । माता-पिता मजूरी करके गुजारा चलाते थे । थोडे समय बाद उनके लडके और लडकी दोनों बडे हुए । थोडे दिनों बाद तो ऐसा समय आ गया कि वे भरपेट खाना भी नही खा सकते थे । लेकिन उनका लडका समझदार था । उसने विचार किया कि पिताजी कमजोर हो गये हैं और हम भरपेट खाना भी नही खा सकते, इसलिए मैं परदेश कमाने जाऊँ । माता पिता को सुखी रखूँ और बहिन की अच्छी जगह शादी कर दूँ । उसे डर था कि उसे उसके माता पिता परदेश नहीं भेजेंगे क्योंकि वह उनका इकलौता बेटा है ।

इस प्रकार विचार करने के बाद वह लडका उसी रात को घर से बाहर निकल गया । उसके माता-पिता ने उसकी बहुत खोज-बीन की । वह बहुत ढूँढने पर भी नहीं मिला । लडका घूमते घूमते एक गाँव पर रुकता है । उसने उस गाँव में अपने भाग्य को आजमाने का विचार किया । वहाँ उसे लाभ नहीं हुआ । जो ठोकर खाता है, वही आगे बढता है । अत ठोकर खाने से कभी घबराना नही चाहिए, लेकिन ठोकर खाने से ज्यादा आगे बढना चाहिए ।

वह लडका भाग्य आजमाते आजमाते दूसरे गाँव आया । वहाँ उसका भाग्य खुल गया । धधा चालू किया । धधा खूब विकसित हो गया । उसे अच्छी आमदनी हुई । पाच वर्ष तक उसने सुख से धधा करने के बाद खूब धन इकट्ठा किया । लडका 19 वर्ष का हो गया है ।

दूसरी तरफ उसकी बहिन भी बडी हो गई । उसके पिता ने इधर-उधर से पैसे मागकर उस लडकी की शादी कर दी ।

उधर लडका खूब कमाता है । अब उसे धन से सतोष हो जाता है । अब उसे इच्छा भी होती है कि वह जल्दी घर पहुँचे और बहन की शादी कर दे तथा माता-पिता को भी सुखी करे। करे । धीरे-धीरे उसने व्यापार समेटना शुरू कर दिया और पूँजी इकट्ठी करने लगा । उसने अपनी पूँजी को एक छोटे डिब्बे म भर दिया, लेकिन वह कितनी ? वह तो लाखों रुपयों की थी । मार्ग मे चोरी हो जाने के भय से उसने फटे-पुराने कपडे पहने और एक साधु का रूप धारण कर लिया । लडका निर्भय होकर आगे बढ़ता है ।

श्री अष्टापद महातीर्थ
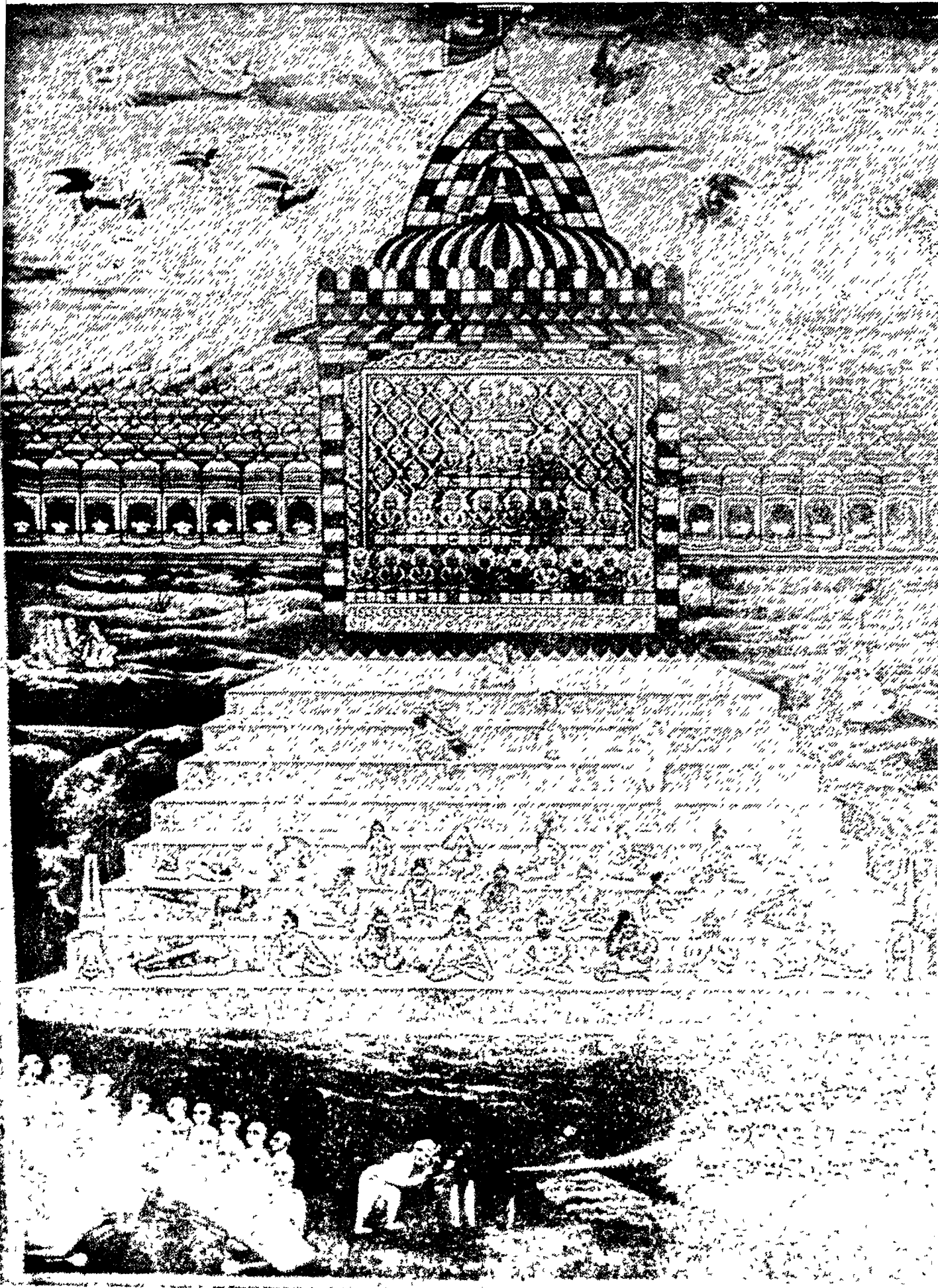
लड़का मुसाफिरी करता-करता आगे बढ़ रहा है। दुपहर हो गई है। वह थक गया है। उसे बुखार हो गया है। उसे प्यास लगी होती है। वह एक गाँव पहुँचता है तथा फिर उस स्थान पर पहुँचता है—जहाँ एक कुआ है और औरतें पानी भर रही हैं। वह वहाँ जाता है और कहता है कि "बहन, पानी पिलाओ।" उसे यह मालूम नही होता है कि वही उसकी सगी बहन है। उसकी बहन का ससुराल भी वही होता है तथा वही उसकी सगी बहन थी। जैसे ही दोनो भाई-बहन की नजर एक होती है तो बहन कहती है—भाई! भाई भी कहता है—बहन। दोनों के नेत्रो मे हर्ष के आंसू आ जाते है। बहन पूछती है—"भाई! तू कहाँ गया था?" भाई कहता है—"मैं तेरे लिए और माता-पिता के लिए परदेश कमाने हेतु गया था।" लेकिन बहन, तू यहाँ कैसे आई? बहन कहती है—"यह मेरा ससुराल है।"

भाई को बहुत दुःख होता है; क्योकि वह उसकी शादी करने हेतु धन कमाकर लाया था। वह कहता है, बहन? "मुझे पहले पानी पिला।" पानी पीकर उन्होंने बातें की। भाई कहता है कि अब वह घर की तरफ जा रहा है। तब बहन ने कहा कि पिताजी गुजर गये है और माँ मुसाफिरों को खिला-पिलाकर पैसे लेकर गुजारा चलाती हैं। भाई को बहुत दुःख हुआ, लेकिन फिर बहन को कहता है कि अगर हम दोनों साथ घर जावें, तो बहुत आनन्द होगा। बहन ने कहा, मैं छुट्टी लेकर आऊँगी तो जरूर, लेकिन मेरी एक शर्त है कि जब तक मै न आऊँ, तब तक माँ से तू अपनी जान-पहचान मत करवाना। मैं आऊँगी, तभी मैं तेरी माँ से जान-पहचान कराऊँगी।

भाई ने शर्त स्वीकार कर ली। भाई घर पहुँच गया। वह वहाँ एक मुसाफिर की तरह रहता है। वह अपनी माँ को तो पहचान ही गया था। शाम हो गई थी। उसे अपनी माँ पर विश्वास था, इसलिए उसने सारा धन अपनी माँ को देकर कहा, "बहन, मेरे इतने जोखिम को सुरक्षित रखिए।" मैं बाहर जाकर आ रहा हूँ। ऐसा कहकर वह घूमने निकल पड़ा।

माँ ने धन एक तरफ छुपा दिया। माँ को विचार आया कि क्यों न इस मुसाफिर को मार दिया जावे और फिर सारा धन मेरा हो जायेगा। इस मुसाफिर को पहचानेगा भी कौन? इस तरह उसकी माँ की नीयत बिगड़ गई। लेकिन उसे यह खबर नही थी कि वह स्वयं उसका बेटा है। रात को लड़का आया और उसने खाना खाया। फिर वह पूरे दिन भर की थकान होने के कारण आराम से सो गया। उसके मन के अनुसार तो वह उसी का ही घर था। वह उसकी माँ है। इससे विश्वास रखकर आराम से सोया है। उसको बहुत आनन्द था कि बहन आवेगी और मेरी जान-पहचान होगी तथा घर मे आनन्द ही आनन्द छा जावेगा।

मध्यरात्रि हो गई है। सब सो गये है। सिर्फ बूढ़ी माँ जग रही है। वह अपनी खटिया में से उठकर उस बेटे रूपी मुसाफिर की छाती पर चढ़ जाती है और उसका गला दबा देती है। उसे तो अपने और पराये का भेद नहीं होता है। रातोंरात खड्डा खोदकर सारी विधि पूरी कर देती है।

दूसरे ही दिन उसकी बेटी छुट्टी लेकर आ जाती है। आकर के माँ-बेटी दोनो बातें करती है। लेकिन उसकी बेटी को चैन नही होता; क्योंकि उसका भाई कही दिखाई नही देता है। उसने सोचा कि कही घूमने गया होगा। थोड़ी देर में आवेगा, लेकिन बहुत देर तक इन्तजार करने पर भी वह नहीं आता। वह बहुत व्याकुल हो गई। उससे अब नही रहा जा सकता था और उसने माँ से

पूछ लिया, "माँ, एक-दो दिन पहले क्या कोई मुसाफिर आया था ?" माँ कहती है, "अरे ! दो-तीन दिनो से कोई नही आया ।" आपने पढा कि किस प्रकार पाप को ढँकने के लिए झूठ भी बोलना पड़ता है । बेटी कहती है—"सच-सच बता, माँ ।" उसकी माँ कहती है कि इससे तुझे क्या मतलब है ? बहन कहती है—'माँ, वो मेरा भाई था और आपका सगा बेटा ।" यह सुनते ही माँ बेहोशी के कारण गिर पडती है ।

यदि माँ ने परायो को अपना समझा होता, तो उसे कभी ऐसा दु ख न उठाना पडता । भेद के दु ख जैसा कोई दु ख ही नही है । भेद होने पर दु ख भी साथ साथ चला आता है ।

शैतान का सेन्स

—मुनि श्री वीरसेन विजय

एक दिन शैतान क्रोध से लाल-पीला हो गया। कारण यह था कि मानव जाति को बरबाद करने की कोई भी युक्ति, कोई भी व्यूह काम नही आ रहे थे। अत इस प्रश्न पर विचार विमर्श करने के लिये उन्होंने सभी उत्तर साधको का सम्मेलन बुलाया ।

एक के बाद एक सभी उत्तर साधको ने अपनी-अपनी बात कही । एक ने कहा, मैं पुन एक बार प्रयत्नपूर्वक प्रचार करूँगा कि भगवान है ही नहीं ।

दूसरे ने कहा—मैं ऐसा प्रचार करूँगा कि नरक है ही नहीं । इससे लोग पापो से नही डरेंगे और पूर्ण मानव जाति बरबाद हो जायेगी ।

इन्ही बातो के बीच एक कोने से आवाज आयी—मुझे एक बहुत ही अच्छा रास्ता ज्ञात हुआ है । मानवो से कहो कि "किसी प्रकार की उतावल नहीं है" । इस बात को सम्मेलन मे सबने पसन्द किया और इसी शस्त्र का उपयोग किया गया ।

तब से मानव के मन मे यह विचार आने लगा कि 'किसी प्रकार की उतावल नहीं है ।

शैतान की यह युक्ति सफल हुई और जब से मानव ने काम कल पर छोडना शुरू किया, तब से मानव जाति की बरबादी होनी प्रारम्भ हुई ।

ऋषभदेव तथा भारतवर्ष

—दिलबाग राय जैन—

ग्राम लोगों का ख्याल है कि जैन धर्म के संस्थापक भगवान नेमनाथ, पार्श्वनाथ या भगवान महावीर हैं। जैन धर्म का सही प्रचार नही होने के कारण ही ऐसी भ्रान्ति उत्पन्न हुई है। जैन धर्म तो अनादिकाल से चला आ रहा है जिसका वर्णन वेदों में भी मिलता है।

आर्य लोग जब यहाँ आये थे, भारतवर्ष का नाम उस समय आर्यव्रत पड़ा। उस समय लोग अपनी आवश्यकताएँ कल्पवृक्षो द्वारा पूरी करते थे इसलिये धर्म कर्म की आवश्यकता नही होती थी। धीरे-धीरे कल्पवृक्षों की शक्ति समाप्त हो गई : उस समय जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर के रूप में ऋषभदेव भगवान का श्री नाभीराय तथा माता मरु देवी के यहाँ जन्म हुआ। उस समय तक लोग वृक्ष के नीचे रहते थे जिन्हें आग-पानी का भी ज्ञान नहीं था।

श्री ऋषभदेव का जन्म अयोध्या नगरी मे हुआ और इसके साथ ही कई और जैन तीर्थंकरों का जन्म भी यहीं हुआ है। इसलिये इस भूमि को जैन तथा हिन्दू तो पवित्र मानते ही हैं। मुसलमान भी इस भूमि को बाबा आदम का जन्म स्थान मानते है। कुरान शरीफ में बाबा आदम का जन्म स्थान भारतवर्ष का अयोध्या बताया है। यह बाबा आदम और कोई नहीं बल्कि ऋषभदेव भगवान ही हैं। यह बात बौद्धिक शब्दों में तथा अथर्ववेद में में भी प्रमाणित की जा चुकी है।

(It was confirmed by Prof. A. Chakravrti I.C.S. & URDU MILAP New Delhi)

श्री ऋषभदेव ने ही संसार को धार्मिक शिक्षा दी। खेतीबाड़ी आदि व्यापार की विधि बताई तथा पहिया तथा आग पानी का ज्ञान बताया। चूंकि यह ज्ञान देने वाले प्रथम महापुरुष थे इसलिये इनको आदिनाथ, आदिश्वर तथा प्रथम तीर्थंकर] कहा गया है। यह बात अथर्ववेद में कही गई है। पूर्ण पापों से रहित प्रथम राजा आदित्यस्वरुप भी ऋषभदेव हैं। जैन धर्म मे श्री ऋषभदेव भगवान को कैलाश पर्वत पर होना बताया है तथा इनका चिन्ह बैल है। यह बैल शिवजी के बैल नन्दी जैसा है। इसको सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ जिनेन्द्र कहा है। वेद भी यही मानते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये शिवजी और कोई नहीं बल्कि ऋषभदेव भगवान ही हैं। ऋग्वेद मे इनकी रुद्र, शिवजी और ब्रह्मा, मिष्टभाषी, ज्ञान स्तुतीयोग्य, उत्तम पूजक, नमस्कार योग्य, समस्त स्वामियों के स्वामी, कर्मरूपी शत्रुओं को भगाने वाले, यजुर्वेद में धर्माचरण करने वालों में सर्वश्रेष्ठ माना है। संसार रूपी सागर से पार कराने वाले भगवत पुराण मे सर्वज्ञ विष्णु ब्रह्मा महाभारत मे शिवजी, प्रभांस पुराण में कैलाश पर्वत से मोक्ष प्राप्त करने वाले शिवजी, जिनेश्वर बौद्ध ग्रन्थों मे सर्वज्ञ और मनुस्मृति में उनकी पूजा से ६८ तीर्थो की यात्रा का पता लगाया है।

श्री आदिनाथ, ऋषभदेव श्री भगनीन्द्र के पौत्र तथा मरुदेवी के पुत्र है और इनके पूजन के स्मरण से ६८ तीर्थो का फल प्राप्त होता है ऐसा श्रीमद्भगवत पुराणों में लेख है।

यहाँ जैन धम के ही नहीं बल्कि सभी धर्मों के पूज्य श्री ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत जी आर्यव्रत मे प्रथम चक्रवर्ती राजा हुए हैं, इन के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा है। यह प्रमाण आग्नेय पुराण, कर्मपुराण, गरुण पुराण, यजुर्वेद, श्रीमद्भगवत पुराण तथा अनेक प्राचीन जैन अजैन ग्रन्थ स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि "अगनीन्द्र के पुत्र नाभी और नाभी के पुत्र ऋषभ थे जिनके सौ पुत्र थे जिनमे ज्येष्ठ पुत्र भरत थे। ऋषभदेव तप करने जाने से पूव अपना राज्य अपने पुत्रों मे बांट गये और भरतजी को हिमालय के दक्षिण की तरफ का क्षेत्र दिया गया। भरत ने अपने भाईयो को पराजित करके उनके राज्य अपने अधीन कर लिये थे। वे पहले चक्रवर्ती राजा बने तथा अपने क्षेत्र का नाम उन्होंने भारतवर्ष दिया।

कालीदास के नाटक शकुन्तला मे महाराजा दुष्यन्त का पुत्र जिस भरत को बनाया गया है तथा कहा गया है कि भारतवप इसी के नाम से पडा है सही नहीं है। जिस भरत ने भारतवर्ष का नाम दिया था वे ऋषभदेव के पुत्र ही थे। यह मान्यता आर्य समाज की भी है। वेदो के जन्म से पूर्व चक्रवर्ती राजा भरत हुए थे जभी तो वेदों मे उनका वर्णन किया गया है। दुष्यन्त का पुत्र भरत तो चन्द्रवशी पुरु की ३१वी पीढ़ी मे हुआ है।

It has been proved in Brahmanical Puranik recorded that rishbha was the father of bharat from whom INDIA TOOK ITS NAME BHARAT-VARSHA '1—Prof J stevenson

हमारा देश पुरु के समय भी भारतवप कहलाता था तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतवप को बसाने वाले भरत कोई और नही थे किन्तु ऋषभदेव भगवान के पुत्र चक्रवर्ती राजा भरत ने ही भारतवप का नाम दिया तथा हस्तिनापुर को अपनी राजधानी बनाई।

विष्णुपुराण, शिवपुराण, वायुपुराण, स्कन्धपुराण, अग्निम पुराण, नारदीब पुराण, कमपुराण, गरुड पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, वाराह पुराण, लिंग पुराण, ऋग्वेद, अथर्ववेद आदि अनेकों पुराणो तथा ग्रन्थो एव विद्वानो ने भी सिद्ध कर दिया है कि जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव के प्रथम पुत्र भरत के नाम से ही इस देश का नाम भारतवर्ष पडा।

देश की आकाशवाणी तथा सरकारी तन्त्रों द्वारा आज भी दुष्यन्त के पुत्र भरत के नाम पर भारतवप होना बताया जाता है। इतना कुछ होते हुए भी आज जैन धर्म वाले स्वय ही इस तथ्य को सही नहीं करा सके जबकि आर्य समाज के समाचारपत्र, तेज, मिलाप, प्रताप तथा हिन्दुस्तान टाइम्स इस बारे में स्पष्ट लिख चुके हैं। पत्रों ने प्रमाण भी दिये हैं लेकिन खेद है जैन धर्म या उनके प्रचारको ने इस दिशा मे कुछ भी नही किया। हमे अपने जैन धम ग्रन्थो पर अनुसधान कराना चाहिये जिससे असली तथ्य सामने आ सके।

सम्राट अकबर प्रतिबोधक

दादा गुरुदेव हीर सूरीश्वरजी महाराज साहब

⊛ न्याय विजय जी महाराज

गुजरात देश मे (प्रहलादनपुर) पालनपुर मे दादा गुरुदेव का जन्म ओसवाल घराने में संवत् १५८३ में हुआ। पिता का नाम कुराशाह तथा माता का नाम नाथी बाई था। माता द्वारा आपके जन्म के पूर्व स्वप्न मे हाथी देखने से आपका नाम हीर कुमार रखा गया। माता-पिता की धर्म भावना से बालक पर धार्मिक संस्कार पड़ना स्वाभाविक बात थी।

ग्रामानुग्राम विहार करके आचार्य विजय दान सूरि का आगमन पालनपुर शहर मे हुआ। वहां भव्य जीवों को उपदेश दिया--"वैभव जल तरंग की तरह चचल है। जीवन बिजली की तरह है। अतः प्राणी को धर्माराधना में आलस नही करना चाहिये।" इस सार गर्भित वाणी को सुनकर हीर संसार से उद्विग्न हुआ। हीर के माता-पिता स्वर्ग सिधार गये थे। बड़ी बहन विमला से दीक्षा के लिए आज्ञा माँगी। बहन ने अनेक प्रकार के प्रलोभन दिये, लेकिन हीर कुमार विचारों में दृढ़ रहा। बहिन तथा सगे-सम्बन्धियों ने वैराग्य लेने के लिए अनुमति दी। सं० १५९६ कार्तिक वदी २ के दिन आचार्य श्री दान सूरि ने गुजरात पाटण में महा समारोह पूर्वक हीर को दीक्षा प्रदान की तथा उनका नाम हीर हर्ष रखा। अल्प समय मे ही आपने समग्र शास्त्रो का अध्ययन किया। गुरुजी ने इनकी योग्यता देखकर सं० १६०६ मे नाडुलाई में पंडित पद एवं सं० १६०८ में उपाध्याय पद से विभूषित किया। सं० १६१० में आचार्य पद सिरोही में हुआ। सूरि पद के अपूर्व महोत्सव का खर्च राणकपुर निर्माता के वंशज दूदा राजा के मन्त्री चांगा संघपति ने किया था।

एक दिन अकबर ने कहा—मेरे सभा मंडल में सभी दर्शनों में प्रसिद्ध ऐसा कोई साधु-सन्त है जो निष्पाप धर्म मार्ग का उपदेश करता हो। सभा में से उत्तर मिला, जैन धर्म के श्री हीर विजय सूरि ऐसे ही प्रतापी है।

शाह अकबर एक दिन महल में बैठे हुए देख रहे थे कि एक बड़ा भारी जुलूस राज दरबार के पास से जा रहा है। बादशाह ने पूछा तो जवाब मिला कि चम्पाबाई ने छ महिने के उपवास किये हैं। अकबर बड़े आश्चर्य में पड़े। जुलूस रुकाकर चम्पा बहिन को बादशाह ने बुलाकर उससे पूछा-छः महिने का घोर तप तुम किसकी कृपा से कर रही हो। बहिन बोली-मेरे गुरु महाराज सूरि पुरंदर युग प्रधान विजय हीर सूरि जी की मेहरबानी से कर रही हूँ। वे इस समय गुजरात के कंधार नगर मे विराजमान है। ऐसा सुनकर बादशाह के दिल मे सूरि जी के दर्शन करने की उत्कट भावना जागृत हुई।

सम्राट ने अहमदाबाद के सूबेदार को फरमान पत्र भेजा। सितावखां सूबेदार फरमान पत्र सूरि जी के पास लेकर कधार बदर गए एवं सूरि जी को पत्र पढ़ाया। जैन श्री संघ ने भी पत्र पढ़ा।

श्री सघ ने आचार्य श्री से कहा—गुरुदेव प्रदेशी राजा को केशीगणधर ने अहिंसक बनाया, उसी तरह वादशाह को भी दयाधर्मी बनावें। आचार्य श्री श्रीसघ से कहकर आगरा की ओर १३ साधुओं के साथ विहार किया। गधार से सूरि जी वडदलु गाँव में पधारे तब स्वप्न मे शासन देवी ने कहा-गुरुदेव आप खुशी से बादशाह के पास जाइए, महान् लाभ एव शासन प्रभावना होगी। आचार्य श्री का अहमदाबाद मे सूवेदार ने बहुत सत्कार सम्मान किया। सिरोही में देवडा महाराज ने बहुमान-पूर्वक प्रवेश कराया। सूरि जी के उपदेश से राजा ने मांस मदिरा का त्याग किया। नागौर, आबू, फलौदी, सागानेर आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए सूरि जी स० १६४० आषाढ वदी १३ फतहपुर सीकरी पधारे।

प्रथम मुलाकात सम्राट अकबर के मुख्य म त्री अबुल फजल से हुई। आचार्य श्री ने अबुल फजल को जैन साधु सन्तो की दिनचर्या, नियम, अहिंसा का स्वरूपादि बतलाया। मन्त्री ने प्रसन्न होकर बादशाह से सारी घटनाय सुनाई। सम्राट ने सूरि जी के दर्शन किये। सूरि जी का प्रवेश अपने महल मे कराया। आचार्य श्री ने सभा में बादशाह को उद्देश्य करके धर्म का सार समझाया। प्राणी का महारम, परिग्रह एव मास के भोजन से नरक मे जाता है अत जीवो पर दया करना परम श्रेष्ठ है। आपका उपदेश सुनकर शाह बडे प्रभावित हुए। प्रतिदिन सवा सेर चिडियों की जीभों को खाने वाला बादशाह आगे से न खाने के लिए नियम लिया। सूरि जी ने निरपराधी लाखों बन्दियो को जेल से मुक्त कराया ३०० मछली की जालें जलवाये। १२ कोस के घेरे वाला डामर सरोवर पर पिंजरे मे बन्द किये हुए लाखो पक्षियो को छुड़वाया। चातुर्मास करने के लिए सूरि जी आगरा पधारे। वहाँ चितामणी पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा की पर्युषण पर्व में बादशाह के राज्य में ८ दिन हिंसा न हो, सूरि जी बहुमान करके ४ दिन अपनी तरफ से बढाये अर्थात् १२ दिन अहिंसा धर्म पाला जावे। आपके गुणो से आकर्षित होकर आपको जगद् गुरु की पदवी १६४१ में सम्राट ने प्रदान की आप और आपके शिष्य प्रशिष्य विजय सेन सूरि उपाध्याय भानुचन्द्रजी, उपाध्याय शान्तिचन्द्र जी आदि के उपदेश से सम्राट प्रतिवर्ष भारत में छ महिना अहिंसा पालन कराता था। शत्रुजय महान् तीर्थ पर प्रति मनुष्य का सोने का एक टका टेक्स लगता था, उसे बन्द कराया। सारे भारत का जजीया कर माफ कराया।

तपश्चर्या

गुरुदेव दीक्षा के दिन से जीवनपर्यन्त तपश्चर्या कम से कम प्रतिदिन एकासणा पाँच विगइ का त्याग हमेशा बारा द्रव्य करते थे। भव आलोचना के २२५ छट्ठ ३०० उपवास किये। भूत, भविष्य, वर्तमान तीनो चौबीसी का ध्यान धरने की इच्छा से बहोत्तर अट्ठम एव दो हजार आयबिल की तपश्चर्या की। बीशस्थानक तप आराधन के लिए २८ आयबिल तथा दो हजार नीवी की, एकदन्ती-पात्र के अन्दर एक बार अन्न जल अविछिन्न पडे उतना आहार करना अथवा एक दाणा खाये तो एक सित्थ तप किये। दुबारा तीन हजार छ सौ उपवास किये। आपने अपने गुरुदेव की भक्ति के निमित्त प्रथम उपवास उसके ऊपर एकासणा उसके ऊपर आयबिल उसके ऊपर उपवास इस प्रकार से १३ महिने की तपचर्या की बावीस मास तक सूत्र

सम्बन्धी योगों द्वहन कर तीव्र तप किया। तीन मास तक विधि पूर्वक सूरि मन्त्र की आराधना की। ४ करोड़ श्लोकों का अनेक स्थानों पर स्वाधाय ध्यान किया। ५०० जिन प्रतिमाओ की अपने कर कमलों द्वारा प्रतिष्ठा की। आपकी आज्ञा का पालन ५०० साधु-साध्वियां करते थे। ऊना नगर सौराष्ट्र में सं० १६५२ भादवा सुदी ११ गुरुवार को आचार्य श्री पंच परमेष्ठि का शुभ स्मरण करते हुए रात्रि को स्वर्ग सिधारे।

—०—

है कौन ?

—शान्ति देवी लोढ़ा

है कौन छिपा फूलों के सौरभ में आकर, है कौन छिपा पत्तो की इस हरियाली मे ?
है कौन दे रहा ताप सूर्य को अति प्रचण्ड, है कौन चन्द्रमा की शीतल उजियाली में ?
है कौन निशा की नीरव काली चादर मे, तारों से मोती सजा-सजा हर्षित होता,
है कौन उषा के कोमल कलित कपोलों पर, कुमकुम का टीका लगा लाल है कर देता ?
है कौन छिपा सागर के अन्तर में जाकर, किसके छूने को सागर भी है मचल रहा ?
सरिता की चंचल ललित लहर के नर्त्तन में, है किसका नव संदेश भला यह झलक रहा ?
है कौन छिपा मधु ऋतु की सुषमा में आकर, है कौन कूक मे कोयल की मधु घोल रहा ?
है कौन चमकता चपला की चंचल छवि में, है कौन बादलों के गर्जन में बोल रहा ?
है कौन भला दिन का प्रकाश देता हमको, फिर निशा अन्धेरी कौन भला कर जाता है ?
जो सूर्य सजाता पूर्व दिशा को प्रातः काल, वह क्यो संध्या को पश्चिम में ढल जाता है ?
जो चन्द्र पूर्णिमा को अम्बर मे सजता है, वह अमा निशा में भला कहाँ छिप जाता है ?
है कौन भला चुपचाप अश्रु कण बिखरा कर, प्यासी पृथ्वी पर तुहिन बिन्दु बरसाता है ?
है कौन दीप की बाती में जो चमक रहा, है कौन छिपा मृदु झोंकों मे मलयानिल के ?
है इन्द्रधनुष में किसकी शोभा झलक रही, है नीले नभ मे कौन खेलता हिलमिल के ?
है कौन जगत का कर्णधार है, सृष्टा है, है किसके संकेतों पर सृष्टि नाच रही ?
है कौन भला जो लुक छिप करके आता है, चर और अचर में किसकी सत्ता व्याही रही ?

एक समस्या ! एक समाधान !!

—ले० हीराचन्द बेद

कुछ वर्ष पूर्व विश्व भर मे भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण वर्ष के पुनीत अवसर पर उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करने हेतु विविध आयोजन सम्पन्न हुये। कुछ प्रचारात्मक थे जिनके माध्यम से जैन और जैनेतरो मे भगवान की शिक्षाओ पर प्रकाश डाला गया था व अपेक्षा की गई थी कि उन पर चलकर हम विश्व मे शान्ति व अहिंसा के सिद्धान्तो पर दृढ निष्ठा उत्पन्न करने में सफल होंगे। कुछ कार्य रचनात्मक थे जो स्मारक रूप मे भगवान के प्रति निष्ठा और श्रद्धा के द्योतक थे यथा शिक्षा व स्वास्थ्य सेवा सस्थानो की स्थापना। दोनों ही तरह के आयोजन और कार्य काफी बडे रूप मे सम्पन्न किये गये और हमने उनमें गौरव का अहसास किया।

इनमे एक काम ऐसा था जो प्रचारात्मक भी था साथ ही रचनात्मक भी। वह था विश्वविद्यालयो मे जैन चेयर की स्थापना यानी जैन दर्शन के शिक्षण की व्यवस्था। राजस्थान व उदयपुर विश्वविद्यालयो में भी इस अवसर पर सरकार और जनता के सहयोग से ऐसी व्यवस्थाए की गई। इस प्रसग मे गौरव लेने जैसी एक बात यह भी हुई कि जैनो से ज्यादा जैनेतरो मे जैन दर्शन की शिक्षा प्राप्त करने की रुचि देखी गई।

पर यह गौरव व उत्साह ज्यादा दिन कायम नही रह सका और एक बहुत बडी समस्या के साथ यह प्रश्न विचारणीय बन गया।

जैन दर्शन और जैन साहित्य के सम्बन्ध मे विश्वविद्यालयो मे पढाई जा सकने वाली पुस्तकें हम नहीं दे सके। एक ओर यह कहा जाता रहा है कि भारतीय साहित्य मे से यदि जैन साहित्य को हटा लिया जाये तो साहित्यिक क्षेत्र मे बडी रिक्तता आ जावेगी, दूसरी ओर विश्वविद्यालय स्तर के शिक्षण के लिए हमारे पास ग्राह्य साहित्य उपलब्ध नहीं है। यह बडी विडम्बना है ? समस्या है।

यह भी सोचा गया कि जैन विद्वानो के विभिन्न विषयो पर व्याख्यान कराकर उन्हे लेखबद्ध कर प्रकाशित किया जावे ताकि इस रूप मे साहित्य तैयार किया जा सके, पर इस ओर प्रयास किये जाने पर भी सफलता प्राप्त नही हुई। कुछ तो हिन्दी मे वक्ता और लेखक रूप में अधिकारी विद्वान प्राप्त नहीं हुये। दूसरे वक्ता इतने निष्णात नहीं निकले कि वे स्नातकोत्तर माध्यम का साहित्य निर्माण करने में योगदान कर सकें।

अब इस प्रश्न के दूसरे पहलू पर विचार करलें। हमारे समाज मे श्रावकवर्ग मे गहन अध्ययन की तरफ विशेष रुचि नहीं है। अध्ययन तो दूर साहित्य पठन यानी स्वाध्याय की ओर भी प्रवृत्ति नही जमी है। हाँ श्रमणवर्ग पर हम इस मामले में पूरी तरह निर्भर हैं। शिक्षा और स्वाध्याय उनका विषय है। पर आज सख्या की दृष्टि से बढते जाने वाले श्रमण समाज में क्या योग्यता, ज्ञान-पिपासा अध्ययन वृत्ति व शोधखोज भावना उसी अनुपात मे बढ रही है। पाट पर बैठकर अपने भक्तों को उपदेश देना और बात है, योग्यता और निष्णातता प्राप्त करना दूसरी बात है। गत

कुछ वर्षो मे हमने जैन श्रमण वर्ग मे जो अधिकारी विद्वान खोये है उनकी पूर्ति असम्भव नही तो अशक्य अवश्य बन गई है ।

दूसरे जो निष्णात विद्वान आचार्य व मुनिजन है वे दूरस्थ क्षेत्रों मे पहुँचकर अपने प्रवचनों से लाभान्वित नही कर सकते, दूसरे अधिकतर गुजराती भाषी होने के कारण हिन्दीभाषी प्रदेशों मे विशेष उपयोगी नहीं हो पाते । एक बात और भी है, अनेक विद्वान मुनीजन अपने सीमित दृष्टिकोण व विचारधारा के कारण इस कार्य को कोई महत्व नहीं देते ।

इन सारी परिस्थितियों मे भी समस्या का समाधान तो खोजना ही पड़ेगा । जब से भी जैन साहित्य के लेखन का काल मानलें, जैन आचार्यो ने हर विषय पर लेखनी चलाई है और जन-जन के लिए उपयोगी भारतीय साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया है । जैन साहित्य के ऊपर बराबर हुये आक्रमण के बावजूद भी कौनसा विषय ऐसा है जिस पर जैन साहित्य आज उपलब्ध नही है ।

दर्शन, न्याय, व्याकरण, आयुर्वेद, ज्योतिष, कला, इतिहास, श्रृंगार, वीररस, काव्य, रास-तत्व सभी विषयों में भरपूर साहित्य उपलब्ध है ।

हरिभद्र और हेमचन्द्र का साहित्य आज भी विद्वजगत में शीर्षष्ठ स्थान पर लिया जाता है । इनकी बहुतसी कृतियाँ विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती हैं । पर हम आज विद्वजनों का ध्यान अपने निकट काल के महापुरुष की ओर दिलाना चाहते हैं । वे हैं न्याय विशारद–न्यायाचार्य–महोपाध्याय, षड्दर्शनवेत्ता श्रीमद् यशोविजयजी महाराज । तीन सौ वर्ष पूर्व के इस विद्वान ने सरस्वती को साक्षात किया था और विपुल साहित्य का सर्जन किया था । आज भी सब गच्छों में निर्विवाद रूप से इनके ग्रन्थों को साक्षी रूप माना जाता है । और तो और इनकी वाणी सर्वज्ञ की वाणी मानी जाती है । आज उपाध्यायजी का नाम लेते ही यशोविजयजी का नाम तुरत उभर आता है । काशी नरेश ने जैन-जैनेतर विद्वानों की सभा में इनकी योग्यता से प्रभावित होकर 'न्याय विशारद' विरूद्र से सम्मानित किया था ।

इन महापुरुष का स्वर्गवास स० 1743 मे डभोई में हुआ था—आज से केवल आठ वर्ष बाद उनकी तीनसौवीं स्वर्ग तिथि आने वाली है—इस अवसर के उपयुक्त कोई कार्यक्रम अभी से तय किया जा सके तो उक्त समय पर हम सब की ओर से महोपाध्यायजी को सच्ची श्रद्धांजलि प्रस्तुत कर सकेंगे ।

उपाध्यायजी ने प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी मे अटूट साहित्य की रचना की है । आपके प्रमुख ग्रंथ—अध्यात्मसार, उवरासरहस्य, अस्पृशद्गतिवाद, ज्ञान बिन्दु, ज्ञानसार, देवधर्म परीक्षा, नयरहस्य, नयोपदेश, न्यायालोक, वादमाला, विषमतावाद, वैराग्यरति, सिद्ध सहस्रनाम कोश आदि है साथ ही अनेक प्राचीन ग्रंथों की टीकायें भी आपने लिखी हैं । द्वादशारनयचक्रोद्धार की टीका भी अपने ढंग की अनोखी है । सार यह है कि हर विषय में उपाध्यायजी का इतना साहित्य है कि यदि योजनाबद्ध रूप में इसे हिन्दी भाषा में अनुवादित किया जावे तो साहित्यिक क्षेत्र मे काफी समृद्धता आ जावे ।

सौभाग्य से उपाध्यायजी की आठ वर्ष बाद तीनसौवी पुण्यतिथि आ रही है । आठ साल का समय साहित्य निर्माण के लिये काफी है । योग्य विद्वान मुनीजनों की भी शासन में कमी नहीं और सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उपाध्यायजी के साहित्य के प्रति सब ही गच्छों व संघाडों की आदरपूर्ण

भावना है। अनेक मुनिराजो ने इनके साहित्य की व्याख्यायें की हैं। उपाध्यायजी के ही नामराशि एवं उनकी स्वग भूमि मे जन्मे कलाएवं साहित्य प्रेमी यशोविजयजी महाराज एवं समय लेखक व व्याख्याता गणिवय मद गुप्त विजयजी महाराज इनके व्याख्याकारों में प्रमुख हैं—और भी अनेक मुनिवर्यों ने इनके ऊपर खूब विवेचन किया है। शासन के ऐसे प्रबुद्ध सत मिलकर एक योजना बनाकर उपाध्याय जी के विभिन्न ग्रथों पर प्रतिवर्ष पाच पुस्तकें भी लिखें तो सहज ही चालीस ग्रथ तैयार हो सकते हैं। इससे जहा विश्वविद्यालय स्तर के साहित्य की हमारी समस्या का समाधान होगा, वहा उपाध्यायजी के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाजलि भी प्रस्तुत हो सकेगी। ऐसे साहित्य के निर्माण में गच्छ व सम्प्रदायों की वाडे वन्दी से बचकर काय किया जा सके और सब ही समुदायों के प्रबुद्ध मुनिजनो का सहयोग लिया जा सके तो एक नये युग का सूत्रपात होगा और हम सब एक दूसरे के निकट भी आ सकेंगे। इस रूप में भगवान महावीर के प्रति भी हमारी सच्ची श्रद्धाजलि प्रस्तुत होगी।

एक सामान्य शिक्षित व्यक्ति के माध्यम से व्यक्त की गई यह भावना यदि साकार रूप ले सकी तो शासन की महान सेवा होगी और जो जो भी विद्वान श्रमण भगवन्त इस सम्बन्ध में योगदान करेंगे वे महान उपकारी होंगे सारे विश्व की बौद्धिक जनता के प्रति।

—०—

बोल

१ क्रोध जैसा—जहर नही।
२ क्षमा जैसा—अमृत नही।
३ मान जैसा—वैरी नही।
४ उद्यम जैसा–मित्र नही।
५ दगा जैसा—डर नहीं।
६ सत्य जैसा—शरण नही।
७ सतोष जैसा—सुख नहीं।
८ तृष्णा जैसा—दु ख नहीं।
९ मिथ्या जैसा—अ धा नहीं।
१० बोले ज्ञान जैसा—प्रकाश नही।

—भरत शाह

"मनुष्य-जन्म की सफलता"

लेखिका—सा. राजुला श्रीजी ना शिष्या प्रगुणा श्री.

बहुत लोगों का मानना है कि गंगा में स्नान करके मोक्ष मिल गया और सिद्धी हो गई। मगर ऐसा मानना मोती का चौक पुराया जैसी बात है।

यह बात सही है कि मनुष्यभव के माध्यम से ही मोक्ष की प्राप्ति सुलभ हो जाती है। इसी संदर्भ मे उत्तराध्ययन कहा गया है कि यह संसार में मनुष्यत्व आर्य क्षेत्र एवं उच्च जाति तथा शुभ कुल और धर्म श्रवण में सचोट श्रद्धा रखनी चाहिये। मनुष्यभव में संयम उत्तम है, मनुष्यभव विना सयम मिल नही सकता है।

आजके आधुनिक मानव का मानना है कि मनुष्यभव मिला है तो सब मजा ले लेना चाहिये, अगले भव के लिये क्यों सोचें। लेकिन ऐसे मानने वाले समझते नही कि अगले भव के पुण्योदय से ही मनुष्यत्व प्राप्त हुआ है।

ऐसा भी देखा जाता है कि बहुत सारे लोगों को सब तरह कि सुविधायें प्राप्त होती है, जैसे कि उत्तम कुल, सुदृढ़ आरोग्य, आर्य क्षेत्र जन्म, लेकिन मान लीजिये कि सब तरह की सुविधायें होते हुए भी मानव में अकल की जरा सी कमी है। ऐसी अवस्था में हम उस मानव का मनुष्यभव असफल मानते हैं।

हमें मनुष्यभव मिला है, सुमति भी प्राप्त है, धर्म श्रवण का लाभ प्राप्त है, फिर भी हमें हर पल, हर समय यह याद रहना चाहिए कि हमे बड़े पुण्यकर्म से ही मनुष्यभव मिला है, और वह हमें बार-बार नही मिलेगा, इसलिए धर्म श्रवण पठन और वर्तन से यह दुर्लभ भव को सुधारने की कोशिश से ही यह मनुष्यभव सफल रहेगा।

मनुष्य भव पर दृष्टांत

एक व्यापारी था, जिनके पास बहुत से रत्नों का भण्डार था। परन्तु कभी भी उसने एक रत्न बाहर नही निकाला। एक दिन व्यापारी के परदेश जाने पर उनके पुत्रों ने सोचा कि पिता के पास करोड़ों का माल रहने पर भी कोटी ध्वजो की अपने घर मे रख नही सकते हैं इसलिए व्यापारी को वापस आने के बाद उसने देखा घर में एक भी रत्न नहीं मिला। लड़कों ने परदेशी को बेच दिया था। उसने लड़को से कहा कि जल्दी से रत्नों को वापस लाना, मगर जब रत्न मिलने से बहुत दुर्लभ हैं इतना रत्न न होने पर भी मनुष्य भव मिलना बहुत दुर्लभ है।

भक्ति और फल

—कु० मंजुला सिंघी

आज का युग विज्ञान का युग है, हर तरफ आधुनिकता का नशा छाया हुआ है। बिना प्रमाण के किसी तक या सच्चाई पर विश्वास करना तो शायद है ही नहीं।

भक्ति का स्वरूप क्या है, क्यों, किस प्रकार करनी चाहिये। हम जानते नहीं हैं व मानते नहीं, क्योंकि आज का प्रत्येक वर्ग प्रमाण चाहता है। युवा वर्गों का कहना है कि भक्ति मे हमें फल तो मिलता नहीं है तो हम फिजूल में अपना बहुमूल्य समय क्यों नष्ट करें। किन्तु यह सोचना कि हमें भक्ति का, सेवा का फल नहीं मिलता, यह गलत है। हर कार्य मे सफलता की मन्जिल होती है। बिना परिणाम या सफलता के कोई भी कार्य न होता है न ही किया जाता है।

आज व्यक्ति भक्ति करता है उसे फल दिखता नहीं है बस वह कह देता है कि फल तो मिलता नहीं, भगवान कुछ भी नहीं एक फरेब है।

यह सोचना, समझना गलत है। भक्ति का फल मिलता है किन्तु वह दिखाई नहीं देता है।

एक परिवार का सदस्य जिस पर पूरे परिवार का कार्यभार है किन्तु व्यवसाय करने के लिये उसके पास धन ही नहीं है तो व्यवसाय कैसे करेगा। यहां उसे आवश्यकता है पैसों की।

इस धन को जुटाने के लिए कुछ करने का प्रयत्न करने का प्रयास करता है। जिस प्रकार व्यक्ति अपने मन को शान्त करने के लिए ध्यान करता है ठीक इसी प्रकार।

व्यक्ति व्यवसाय को चलाने के लिए बैंक से धन उधार लेकर व्यवसाय चालू करता है।

कुछ समय पश्चात उसका व्यवसाय अच्छा चलने लगता है वह अच्छी आमदनी करने लगता है। किन्तु उसकी हालत अभी तक पुरानी ही तरह है क्योंकि वह पहले लिया हुआ बैंक ऋण चुकाने का प्रयास करता है। जब तक वह ऋण नहीं चुकाता उसकी स्थिति पुरानी ही है। उसे लिये हुये ऋण के फल की प्राप्ती हो रही है किन्तु वह फल कर्जा उतारने मे है। जैसे ही कर्जा उतरा वह अच्छा लखपति आदमी बन जायेगा।

ठीक इसी प्रकार हमारी भक्ति है। भक्ति का फल हमे हर क्षण मिल रहा है किन्तु वह तब तक हमें हमारी आँखों से नहीं दिखाई देता जबतक हमारे पुराने कर्मों (पापों) का नाश नहीं हो जाता। भक्ति हमारे पुराने पापों का नाश करती है। आज संसार मे मानव मानव मे अन्तर है वह सिर्फ इसलिए जैसा हम करते है वैसा फल मिलता है।

स्वयं का कर्म स्वयं को उतारना पडता है। ठीक इसी प्रकार अपने अशुभ कार्यों का फल स्वयं को भोगना पडता है।

अतः कभी भी धर्म, भक्ति, सेवा और दया को नहीं छोडना चाहिये। अशुभ कर्मों को हटाना इन्हीं के मार्ग पर चलना है।

जैन समाज की वर्तमान अवस्था

लेखक : **बसन्तीलाल लसोड़**, नीमच (म० प्र०)

व्यक्ति-व्यक्ति मिलकर समाज बनता है। जिस समाज का व्यक्ति चरित्रवान् है, विद्वान् है, अपने धर्म के प्रति निष्ठावान है कर्तव्य के प्रति जागरूक है जो प्रगति की दौड़ में पग से पग मिलाकर चलता है, जो अपने धर्म, संस्कृति, साहित्य, इतिहास और अपने प्राचीन गौरव की रक्षा करता हुआ नवनिर्माण की ओर अग्रसर होता रहता है, वही समाज समुन्नत समाज कहलाता है।

आज जैन समाज समुन्नत समाजो की गिनती में है। हमारा इतिहास उज्ज्वल है, हमारा साहित्य और हमारी संस्कृति महान् है, हमारा कला-कौशल अप्रतिम है, हमारा धर्म सर्वतोमुखी है, सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक धर्म है। आर्थिक दृष्टि से भी हम सबसे आगे हैं। इतनी गौरवशाली उपलब्धियों के होते हुए भी कभी-कभी ऐसा लगता है—हम उन्नति की दौड़ मे, प्रगति की होड में पिछड़ रहे हैं। कहीं न कहीं गड़बड़ है। लगता है हमारी वर्तमान अवस्था संतोषजनक नहीं है। आखिर इसका क्या कारण है। वास्तव में आज हम पथभ्रष्ट हो गये हैं। पूर्वजों के बताये मार्ग से हटकर झँझावात में फँस गये हैं जिससे निकल कर हमे सही दिशा की ओर बढना है।

भारतवर्ष की कुल जनसंख्या सन् 1971 की जनगणना के आँकडों के अनुसार चौवन करोड़ गुणयासी लाख गुणचास हजार आठ सौ नौ है। इस जनसंख्या में हमारी स्थिति क्या है। यह निम्न तालिका से विदित है—

धर्म	जनसंख्या	प्रतिशत
हिन्दू	453292086	82·72
मुसलमान	61417934	11·21
ईसाई	14223382	2·60
सिक्ख	10378797	1·89
बौद्ध	3812325	0·70
जैन	2604646	0·47
अन्य	2220639	0 41
योग	547949809	

इस प्रकार हमारी कुल जनसंख्या 2604646 है जो कि सारे राष्ट्र की केवल 0.47% ही है यानि कि हम सबसे कम हैं। इतनी जनसंख्या कम होने पर भी आज हमारा समाज अनेक पंथों मे, समुदायों मे, अनेक जाति-उपजातियो मे विभक्त है। एक भगवान महावीर के अनुयायी होने पर भी हमारे धर्माराधना के मार्ग अलग है. साधु-समुदाय अलग है, पर्युषणपर्व अलग हैं, संवत्सरी अलग हैं, तिथियों के झगड़े हैं, मुद्दों के विवाद हैं, कई झगड़ों मे करोड़ों रुपये हमने स्वाहा कर दिये हैं और आज भी छोटी-छोटी बातों को लेकर झगड़ रहे हैं। लिखने का तात्पर्य यही है कि आज हमारे मे एकता का नितान्त अभाव है और सच पूछा जाये तो यही हमारे समाज के ह्रास का मुख्य कारण है।

के भी ऐसे केन्द्र स्थापित करने चाहियें जहाँ वे ट्रेनिंग लेकर अपनी जीवन यात्रा को सुगम बना सकें। अनेक छात्र-छात्रायें धन के अभाव मे ऊँची शिक्षा प्राप्त करने से वचित रहते है उनके लिए ऐसे ट्रस्ट स्थापित करने चाहिये जिनसे उनको उचित छात्रवृत्ति मिलती रहे और वे अपना समुचित विकास कर सकें।

इस प्रकार जैन समाज के सामने अनेक जीवित, ज्वलत समस्याएँ हैं जिनका सीधा सम्बन्ध हमारी वर्तमान अवस्था से है अत यदि हमने इनका निराकरण करने की ओर शीघ्र ध्यान दिया तो हमारा समाज उन्नति की दौड मे अग्रसर होकर न केवल अपने प्राचीन गौरव की ही रक्षा कर सकेगा वलिक अपन आध्यात्मिक वल पर एक ऐसे समाज का सृजन कर सकेगा जो अपने नैतिक बल पर विश्वशाति स्थापित करने मे सबसे अग्रणी होगा। "वसुधैव कुटुम्बकम्" जिसका वास्तविक रूप में एकमात्र लक्ष्य और साधना होगी। आइए हम सब मिलकर एकता का ऐसा दीप प्रज्वलित करें जिसकी शुभ्र ज्योत्सना से हमारा समाज सज्जित आलोकित हो उठें।

Three Jewels in Jainism

The three Jewels in Jainism are—

(i) Attainment of Salvation (Karma)

(ii) Self Mortification and penance (Tapasya)

(iii) Absolute purity in life (Pavitrata)

स्वार्थी-दुनिया

—हितेन कुमार वी. शाह

बात बहुत पुरानी है। एक राजा था, वह एक बार सख्त बीमार पड़ा। बहुत इलाज किया गया; दूर-दूर के डाक्टर, वैद्य और हकीम बुलाए गए, किन्तु सब व्यर्थ। रोग दिन-पर-दिन बढ़ता ही जाता था। आखिर खूब अच्छी तरह रोग की जाँच करने के बाद सभी ने एकमत होकर कहा—"हमे बहुत अफसोस है, आपने बहुत देर से सुध ली। अब तो रोग अपनी आखिरी अवस्था को पहुँच चुका है; पर अब भी चिन्ता की बात नही। एक आखिरी उपाय और है।"

मन्त्री ने कहा—"तो जल्दी बताइए, वह क्या उपाय है? हमारे राजा की जिन्दगी बचाने के लिए यदि हमें अपनी जान की भी कुरबानी करनी पड़े, तो भी हम पीछे न हटेंगे। अगर आकाश-पाताल भी एक करना पड़े, तो हम करेंगे। आप मुँह से तो कहिए।"

"अच्छी बात है।" सबने एकमत होकर कहा—"हम आपको जो कुछ बतायेंगे, वह जरा मुश्किल है। एक ऐसा लड़का चाहिए, जिसमें हमारी बताई हुई विशेषताएं हों। उसके कलेजे से दवा तैयार करके राजा को खिलाई जाए तो आशा है राजा स्वस्थ हो जायेंगे। लड़का अठारह साल से बड़ा नहीं होना चाहिए।

कहने भर की देरी थी कि फौरन ही चारों ओर आदमी दौड़ा दिये गये। तीन दिन के भीतर-ही-भीतर सारा देश छान डाला गया। अन्त में एक गरीब किसान के घर उन्हें मनचाहा लड़का मिल ही गया।

बस, फिर क्या था! तुरन्त ही लड़के के माँ-बाप बुलाए गए। लड़के को तराजू के एक पलले में बैठाया गया, और उसके बराबर सोना तौलकर उसके माँ-बाप को दे दिया गया।

लड़के को दरबार में ले जाया गया, उसे मौत के लिए पवित्र कर दिया। अन्त में लड़के को कत्ल करने के लिए जल्लाद को बुलाया गया। जल्लाद ने अपनी तलवार सम्भाल ली। उसने कहा—"लड़के तेरा अन्त समय आ गया है। आखिरी बार भगवान को याद कर ले।" वहाँ से एक साधु निकले और उन्होंने जल्लाद को मना किया।

लेकिन यह क्या? दूसरी तरफ लड़का तो आसमान की ओर देखकर खिलखिलाकर हंस पड़ा। राजा को इससे आश्चर्य हुआ—"लड़के तू हँसता है। मौत तुझे ललकार रही है और तेरे होठों पर हंसी खेल रही है।"

लड़के ने कहा—"मुझे इस स्वार्थी दुनिया पर हसी आती है। सुना था, माँ-बाप बच्चे को लाड़ प्यार करते है, उसके सिर पर आई मुसीबत को अपने सिर पर ले लेते हैं। दरबार में लोगों को न्याय दिया जाता है और राजा तो इन्साफ की मूरत होता है। लेकिन देखने में कुछ और ही आता है। माँ बाप ने सोने के चन्द टुकड़ो के लिए मुझे मौत के मुँह धकेल दिया, दरबार मे मुझे मौत के लिए न्यायोचित और पवित्र कर दिया और आपको मेरी मौत में अपनी जिन्दगी तैरती दिखाई

देती है । मैं ग्रापसे ही पूछता हूँ, ऐसी दशा मे मैं इस स्वार्थी दुनिया पर हँसू नही, तो क्या रोऊँ ? लेकिन इसमे भी क्या होगा ? भला, जब प्रजापालक राजा ही चोरी करने लगे, गाय ही खेत खाने लगे और योद्धा ही घर मे दुबकने लगे, तो फरियाद भी किससे की जाए ?"

साधु ने कहा—"राजाजी, लडका बिल्कुल ठीक कह रहा है । किसी की मौत करके अपनी जिन्दगी को पाना, महान पाप है । दयावान ईश्वर ग्रगर चाहे तो ग्रापको ठीक कर सकता है । मैं पूरा प्रयत्न करूँगा ।"

राजा को पश्चाताप हुग्रा । राजा ने लडके को गले से लगा लिया ग्रौर चूम लिया ग्रौर कहा—"बेटा, तेरे-जैसे निर्दोष बच्चे की जान लेने से तो हजार मौत मरना अच्छा है ।"

साधु की ग्रोर मुडकर कहा—"मैं ग्रापका बहुत आभारी हू । आपने मेरी ग्राँखें खोल दी ।"

कहते हैं कि साधु ने राजा को चन्द दिनो मे ठीक कर दिया ।

शिक्षा —यदि हम इस कहानी को गहराई से सोचें तो जानने को मिलेगा कि यह स्वार्थी दुनिया है । सब ग्रपना स्वार्थ सिद्ध करके ग्रपना कार्य पूरा करना चाहते हैं । दूसरो की किसी को भी चिन्ता नही ।

सफलता

—मुनि श्री वीरसेन विजय

सत्तर साल तक मजदूर के रूप मे जीवन-यापन करने वाले एक मानव ने एक प्रवचन सुना । उस प्रवचन का सार था "तुम्हारी ग्रान्तरिक शक्तियो को जागृत करोगे तो तुम्हारे लिए कोई भी कार्य ग्रशक्य नही है । इस नूतन सत्य ने उसकी कल्पना शक्ति एव उत्साह को जागृत किया और उसने एक बडे व्यापार का विकास किया । मात्र दस वर्ष मे ही इतना कमाया कि ग्रस्सी करोड से ग्रधिक द्रव्य का दान दिया ।

वह कहता था कि —

कोई भी दो मानव शक्तियाँ समान नही होती लेकिन प्रयत्न करें तो मानव ग्रपनी प्रचण्ड शक्ति को जागृत कर सकता है । यह बात अनुभव से ही ज्ञात होती है । सफलता यानि कीर्ति ग्रौर कचन का ग्रर्जन ही नही परन्तु जिस वातावरण मे हम रहते है उसका योग्य रीति से उपयोग कर निज दिल दिमाग देह ग्रौर ग्रात्मा की तमाम शक्तियो का सर्वोत्तम विकास । ग्रत बार-बार निष्फलता मिलने पर भी हताश नही होना । बार बार गिर जाय तो भी खडा होना । धूल झाडकर पुन यात्रा प्रारम्भ करना ।

हम भी यह सदेश झेलें, ग्रपने पास से ग्रौर भी ग्रधिक ग्रपेक्षा रखें । प्रयत्न करें, फिर देखें कि हताश होने का प्रसग नही ग्रायेगा

हमारी एकता

लेखक :—अशोक भंडारी

जैन धर्म एवं समाज का भूतकाल अत्यन्त गौरवपूर्ण था और आज भी जैन समाज देश का सम्पन्न समाज है। हमारे उच्च गुण एवं संगठन के कारण हम दिनोंदिन उन्नति के सोपान पर चढ़ते जाते थे परन्तु वर्तमान मे ऐसा आभाष होता है कि हमारे सगठन में दरार सी पड़ने लगी है। हमारे समाज के अग्रगण्य लोग एकता के लिए बार-बार धर्म प्रेमी श्रावकों से गाव्हान करते हैं।

हमारा मध्यम वर्ग का श्रावक सोचता है कि जिनको एकता के लिए आव्हान करते हैं उन्होने कौन से फूट के बीज बोये हैं? विचारवान पुरुष सोचता है कि धर्म भिरु श्रावकों मे तो हमेशा ही एकता है। क्या पूजा, अनुष्ठान, धर्म क्रिया या सामाजिक कार्य मे आम जनता मे एकता की झलक नही मिलती है? जब बड़े समुदाय में ठोस एकता है तो कहाँ एकता होनी चाहिए यह प्रश्न विचारनीय है।

हमारे नेता वर्ग जिन्हें हम समाज के अग्रगण्य भी कह सकते हैं। उनके स्वयं में एकता का स्तोत्र सूख रहा है। समाज में राग द्वेष की वल्लरी जो फल रही है वह इनकी ही महान् देन है। इने-गिने ये महामान्य अपने स्वयं को पुरे समाज का प्रतिनिधि मानते है। ज्योमेट्री के फार्मुले की तरह अगर उनमे एकता नहीं हैं तो समाज में एकता नहीं है। कभी-कभी जैन समाज मे एक दूसरे गच्छ की एकता की बात का जोर शोर से प्रचार करते है। प्राय जनता एक दूसरे गच्छ के, धार्मिक कार्य में कभी भी भेदभाव नहीं रखती है। उनका सहयोग हमेशा रहता ही है। फिर एकता की चिल्लपो मचती है तो सिर्फ नेता बर्ग की तरफ से। अगर इन नेताओं को एक दुसरे समाज ने उच्च आसन नही दिया, भाषण मे कम समय दिया, पेम्पलेट आदि में उनका नाम नहीं छपा तो वे समाज के धर्म भिरू भोले श्रावकों को भड़काने की कोशिश करेंगे और एकता की रट लगाते-लगाते समाज मे विग्रह के बीज अवश्य बोयेंगे।

समाज के अग्रगण्य लोग एकता चाहते हैं। उनके हाथ में समाज की शक्ति है। समाज के आगेवान है। पैसा है। कार्य करने की क्षमता है फिर एकता क्यो नही है? इसके कारण को खोजना भी आवश्यक है। देखा जावे तो यह उनके लिए एक आकर्षक नारा मात्र है। उनकी करनी व कथनी मे सामन्जस्य नहीं है।

समाज के अग्रगण्य संगठन मजबूत करना चाहते है तो इसके लिए उन्हें स्वयं के आयने मे झांकना पड़ेगा। जहां एकता में रोड़े अटकते हो वे अडचने स्वय से हटानी आवश्यक है। अगर हमारे नेतागण या समाज के गिने चुने लोग स्वयं का ही पूरा समाज या जो वे सोचते या करते हैं वह ही समाज है और उनके विचारधारा के विरूध कोई सोचता है या अपनी राय भी जाहिर करता है तो समाज के विरूद्ध बोलता है। वह समाज कण्टक है आदि इस तरह की विचारधारा से क्या एकता संभव है?

इन नेतावर्ग का प्रचार तंत्र इतना सुदृढ़ है कि उनके हिमायती कितनी भी गल्तियां करें उसको अगर कोई इंगित भी करावे। वे भूलें कितनी भयंकर हो तो वे उन्हें एकदम लोप कर देगे और जो सही भी हो तो भूलें बताने वाले को भी बदनाम करने की सामर्थ्य रखते हैं। साधारण श्रावक अगर

नगण्य सी गलती करेगा तो वह महान गलती गिनी जावेगी। उसे धर्म व समाज की वदनामी का रूप देकर उसे तरह तरह से दबाया जावेगा। धर्म व समाज के हर बात में इज्जत का सवाल आड़े आयेगा और जो वे सोचते हैं वह ही हो तो ठीक है नहीं तो समाज गिर रहा है आदि नारे चालु हो जायेंगे।

समाज के सर्वोच्च पद को विभूषित करने वाले भी जहाँ निष्पक्ष न हो। एक की हर बात मान्य हो और दूसरे की एक भी बात सुनने को तैयार न हो तो क्या ये एकता बनाये रखने के लक्षण है?

नाम की भूख सुरसा की तरह इतनी फैल रही है कि कभी-कभी ऐसा लगता है कि यह हमारी एकता को स्वाहा कर देगी। अपने छोटे से छोटे कार्य को भी महान उपलब्धि कहा जावेगा। दूसरों के गुणों को वे कभी भी सहन नहीं कर सकते हैं। इन महामानवो के गुण गाम्री या उनके हर काय प सहमती प्रकट करे वही समाज का सच्चा हितैषी हो सकता है।

एकता चिल्लाने से नहीं आनी है' यह स्वय से हीं उत्पन्न करनी होगी। धर्म भिरू श्रावक हमेशा एक है। वह सहिष्णु है और किसी का भी अशुभ नहीं चाहता। जब करीब ८०-६० प्रतिशत श्रावकों मे एकता है। शाति है तो यह कोलाहल कहाँ से उठता है? यह एक विचारणीय प्रश्न है। कभी-कभी ऐसा विचार आता है कि अगर ये नेतावर्ग बिल्कुल मौन रहे और यह देखा जावे कि धम भिरू श्रावक में शान्ति ह या नही। समाज मे एकता सबल होती है या दुर्वल। हमारे मे मौन व्रत की महान महिमा हैं इससे कुछ भी शिक्षा ली जावे तो हो सकता है कुछ शान्ति आ सकती है। धारा प्रवाहिक भाषणों से या आकर्षक नारो से एकता नहीं आती है उसके लिए त्याग, सहिष्णुता, निश्पक्ष व्यवहार, नम्रता आदि गुण आवश्यक है। अगर कभी कोई समस्या खडी हुई हो तो शास्त्रों का प्रमाण, जैन आचाय एव जैन दर्शन के महान विद्वानों की राय से मसला हल करना चाहिए। अगर गलती को सुधारन की प्रवृत्ति न हा और अहं की तुष्टि ही करना जानते हैं तो एकता कैसे हागी?

समाज एक है। आम श्रावकों मे गच्छवाद या धर्म के बावत कोई झगडा नही है। वे जिनेश्वर देवो की मूर्ति कहीं पर हो या धम चर्चा कही पर हो उन्हें प्रभू या सतो के दशन आदि मे कोई विरोध नहीं है। किसी भी गच्छ का तपस्वी हो उनके उपाश्रय घर आदि जाकर उनकी अनुमोदना अवश्य करेंगे। उन्हें सूचना भर होनी चाहिये। इन धम भिरू श्रावकों में गच्छ आदि कोई रूकावट नहीं है। क्या इसे एकता नहीं कहेंगे? क्या समाज के अग्रगण्य ही चैत्य परिवाडी मे साथ जायेंगे तब ही एकता कही जायेगी? क्या धर्म भिरू श्रावक एक दूसरे के चैत्य परिवाडी मे शरीक नहीं होते थे? हमेशा होते थे। और होते रहेंगे।

किसी भी समाज व नेतावर्ग में सुधार हो तो आम जनता को सुधारने में समय नहीं लगता है। जो समाज की शक्ति को समेटे हुए है। कार्य करने की शक्ति रखते हैं। समाज को आकर्षक नारे दे सकते हैं। धारा प्रवाहिक भाषणों द्वारा प्रभावित कर सकते हैं। क्या उनके लिए इने-गिने कुछ लोगों में एकता लाना सम्भव नहीं है? अगर उनमे एकता नहीं है तो समाज का कसूर नही है। उनके कहने से आम जनता मे विघटन हो नहीं सकता। समाज अपने रस्ते चलता रहेगा। वे अपनी पूंजी बनाते रहे। उनके कहने मात्र से न तो धम मे क्षति पहुँच सकती है और न समाज को।

अस्तु इसी शुभ कामना के साथ

नमुथुणं सूत्र एवम् उसका महत्व

—राजमल सिंघी, बी. ए. एल. एल. बी, डिप. एल. एस. जी.

जैसाकि हम जानते हैं, नमुत्थुणं सूत्र का उच्चारण हम चैत्यवंदन, सामायिक तथा प्रतिक्रमण के बीच में करते है किन्तु हम में से कितने ऐसे व्यक्ति है जो इसके इतिहास और अर्थ को जानते हैं। यह सर्वमान्य है कि केवल सूत्र के उच्चारण से पूर्ण इच्छित फल प्राप्त नही होता। पूर्ण फल तो तभी प्राप्त होता है जब हम जानें कि हम क्या और क्यों बोल रहे है। यह जानने से ही भाव और भक्ति उत्पन्न होते है और इनके उत्पन्न होने से तथा सूत्रों में बताए गए भगवान के गुणो के अनुसरण से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इतिहास—जिस समय तीर्थंकर भगवान देवलोक से माता के गर्भ मे आते हैं, उस समय इन्द्र महाराज को अवधि ज्ञान द्वारा ज्ञात हो जाता है कि अमुक स्त्री की कोख मे भगवान अवतरित हुए हैं। अपने पूज्य जिनेश्वर देव के दर्शन से इन्द्र देव बहुत प्रसन्न होते है और अपने सिंहासन से उतरकर, अमूल्य वस्त्र पहनकर तीर्थंकर प्रभु के पास जाते हैं। वहाँ जाकर भगवान के सम्मुख उकडू बैठकर तीन बार सिर को जमीन से छूते हुए भगवान को नमस्कार करते है। फिर दोनों हाथ जोड़ते हुए मस्तक पर रखकर, बायां पैर जमीन से उठाकर तथा दायां पैर जमीन पर टेकते हुए रखकर नमुत्थुणं सूत्र का उच्चारण भाव विभोर तथा तन्मय होकर करते है।

अर्थ—सूक्ष्म रूप से इतना जानकर, अब हम इस सूत्र के अर्थ को समझेंगे जिससे हमें अनुभव होगा कि हम भगवान के किन गुणों का गान कर रहे है और मन में यह इच्छा होगी कि हम भी उन गुणों का अनुसरण करें जिससे कभी हमें भी सिद्ध पद की प्राप्ति हो।

(१) नमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं :

अरिहंतों और भगवानों को नमस्कार हो। अरिहंत कौन? अरिहंत वो हैं जो महापुरुष, राजाओं, देवों तथा मनुष्यों से पूजे जाने योग्य हों क्योंकि अरिहंत (अरि=शत्रु और हंत=हनन करने वाला) ने कर्म रूपी शत्रु का हनन किया है, अन्त किया है, नाश किया है। भगवान कौन? जिनमें भग अर्थात् ऐश्वर्य, रूप, यश, श्री, धर्म और पुरुषार्थ की सम्पूर्णता हो।

(२) आइगराणं, तित्थयराणं, सयं-संबुद्धाणं :

अरिहंत और भगवान को नमस्कार क्यो किया क्योंकि वे आइगराणं अर्थात् आदिकर हैं, अर्थात् वे नए शास्त्रों की आदि करते है—नए शास्त्रो का निर्माण करते हैं। वे तित्थयराण अर्थात् तीर्थ की स्थापना करते हैं अर्थात् तीर्थंकर हैं। तीर्थ भी दो प्रकार के होते है—द्रव्य तीर्थ और भाव तीर्थ। द्रव्य तीर्थ उसको कहते हैं जिससे नदियाँ आदि पार कर सकते हैं और भाव तीर्थ जिससे संसार सागर को पार किया जा सकता है। अरिहंत भावतीर्थं की स्थापना करते है। यह भावतीर्थ, साधु-साध्वी, श्रावक, श्राविका से बना हुआ चतुर्विध संघ, व्याख्यान तथा प्रथम गणधर की स्थापना है। वे सयं सम बुद्धाणं हैं—अर्थात् गुरु के उपदेश के बिना ही सम्पूर्ण बुद्धि प्राप्त किए हुए हैं।

(३) पुरिसुत्तमाण, पुरिससीहाण, पुरिसवर, पुण्डरियाण, पुरिसवर गध हत्थीण

अरिहत भगवान को वन्दना क्यो किया ? क्योकि वे पुरिसुत्तमाण, अर्थात् पुरुषो में ज्ञान आदि गुणो के कारण उत्तम हैं, वे पुरिस सीहाण हैं अर्थात् पुरुषो मे सिंह के समान निर्भय होकर सत्य धर्म की गर्जना करते हैं। वे पुरिसवर पुण्डरियाण है अर्थात् वे पुरुषो मे श्रेष्ठ कमल के समान निर्मल है। अर्थात् ससार मे उत्पन्न होने पर भी ससार के भोगो मे आसक्त न होकर, कमल के पत्ते के समान निर्लिप्त रहकर पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं। वे पुरिसवर गध हत्थीण हैं। अर्थात् पुरुषो मे उत्तम गध हस्ती के समान प्रभावशाली है। जिस प्रकार ऐसे हाथी के आते ही छोटे हाथी भग जाते हैं, उसी प्रकार जिस स्थान पर भगवान विहार करते हैं, विचरण करत ह वहाँ से अतिवृष्टि, दुष्काल, बीमारी इत्यादि भाग जाते है।

(४) लोगुत्तमाण, लोगनाहाण, लोगहिआण, लोगपइवाण, लोग पज्जोअगराण

अरिहत भगवान को नमस्कार क्यो किया ? क्योकि वे लोगुत्तमाण हैं, अर्थात् लोक में उत्तम है, लोगनाहाण, अर्थाद् लोकनाथ है, अर्थात् सब प्राणियो की रक्षा करते हैं, अर्थात् जो वस्तु न मिले उसको दिला देते हैं और जो वस्तु प्राप्त हो उस वस्तु की रक्षा करते हैं। वे लोक पइवाण है अर्थात् लोक के दीपक है, अर्थात् सब प्राणियो के हृदय से मोह रूपी अधकार को दूर करके उन्हें सम्यक्त्व प्रदान करते हैं। वे लोक पज्जोअगराण अर्थात् लोक मे प्रकाश करने वाले हैं अर्थात् सूक्ष्म सदेहो को भी दूर करके विशेष बोध देकर ज्ञान का प्रकाश देते हैं। इस प्रकार इस गाथा मे बताया गया है कि भगवान किस प्रकार लोक के लिए उपयोगी है।

(५) अभयदयाण, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदराण, बोहिदयाणं

भगवान को नमस्कार क्यो किया ? क्योकि वे अभयदयाण, अर्थात् अभय प्रदान करने वाले हैं। अर्थात् प्राणियो का सभी प्रकार के भय से मुक्त करते हैं। वे चक्खुदयाण है, अर्थात् श्रद्धा रूपी नेत्र का दान देते है, अर्थात् जीव के लिए आवश्यक श्रद्धा उत्पन्न करते हैं। वे मग्गदयाण ह अर्थात् मार्ग दिखाने वाले हैं, अर्थात् दुष्कर्म का नाश हो, ऐसा माग बताते हैं। वे सरणदयाण है, अर्थात् शरण देते हैं, अर्थात् तत्व चिंतन रूपी सच्चा शरण प्रदान करते हैं। वे बोधिदयाण अर्थात् बुद्धि प्राप्त कराते हैं।

(६) धम्मदयाण, धम्मदेसियाण, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्म वर चाउरत चक्क वट्टीण

अरिहत भगवान को नमस्कार क्यो किया ? क्योकि वे धम्मदयाण हैं अर्थात् वे धर्म समझाने वाले हैं। वे धम्मदेसयाण हैं अर्थात् धर्म की देशना देते हैं—अर्थात् प्रभावशाली वाणी द्वारा धर्म का रहस्य समझाते हैं। वे धम्मनायगाण हैं अर्थात् धम के सच्चे नायक हैं, अर्थात् चारित्र धर्म प्राप्त करते हैं, उसका पालन करते हैं और अन्यो को चारित्र धर्म पालने का उपदेश देते हैं। वे धम्म सारहीण हैं—अर्थात धम के सारथी हैं अर्थात् धर्म सघ का कुशलतापूर्वक सचालन करते है। वे धम्म वर चाउरत चक्कवट्टीण है अर्थात् चार गति को नष्ट करने वाले धम चक्र का प्रवतन करते हैं।

(७) अपडिहय वरनाण दंसण-धराणं, विअट्ट छउमाणं :

अब भगवान के स्वरूप की व्याख्या की जाती है। वे अपडिहय वरनाण दसण धराणं हैं—अर्थात् वे कभी नष्ट न हों ऐसे केवलज्ञान और केवलदर्शन वाले है। वे विअट्ट छउमाण है—अर्थात् वे छद्मस्थता से रहित है (जिनके ज्ञान आदि गुणो के आगे घाति कर्म का आवरण हो वे छद्मस्थ कहलाते है।)

(८) जिणाणं जावियाणं, तिन्नाणं तारयाणं, बुद्धाणं बोहयाणं, मुत्ताणं मोअगाणं :

अरिहंत भगवान को नमस्कार क्यो किया? क्योकि वे जिणाणं जावयाणं है अर्थात् राग-द्वेष को जीतने वाले है। तथा दूसरों को रागद्वेष से जिताने वाले है अर्थात् वे स्वयं जिन (अरिहत) बने हुए है और दूसरो को जिन (अरिहंत) बनाते है। वे तिन्नाणं तारयाणं है अर्थात् वे संसार रूपी समुद्र से पार हो गए हैं और दूसरो को भी पार पहुँचाने वाले है। वे बुद्धाणं बोहयाण है, अर्थात् वे स्वय अज्ञान का नाशकर बुद्ध बने हुए है (बुद्धिमान बने हुए है) और दूसरों को भी बोध (बुद्धि – ज्ञान) देने वाले हैं। वे मुत्ताणं मोअगाणं है अर्थात् वे स्वयं घातिकर्म का नाशकर मुक्त बने हुए है और दूसरों को भी घातिकर्म से मुक्त करते है।

सव्व नुणं, सव्व दरिसिणं, सिव मयल मरुअ मणंत

(९) मक्खय मव्वाबाह मपुणरावित्ती सिद्धिगई नामधेयं, ठाणं, संपत्ताणं, नमो जिणाणं, जिय भयाणं :

अरिहंत भगवान चर्म देह को त्याग कर कहाँ जाते है—यह इस गाथा में बताया गया है—सव्वनुणं सव्वदरिसिणं अर्थात् भगवान जो सर्वज्ञ है और सर्व दर्शी है, वे चर्म देह को त्यागकर ऐसे स्थान मे जाते है जो सिव मयल मरुअ, मणंत, मक्खय मव्वाबाह है। 'सिव अर्थात् जो स्थान उपद्रव से रहित है। मयल अर्थात् जो स्थान स्थिर है; मरुअ अर्थात् जो स्थान दुख और दर्द से रहित है; मणत अर्थात् जो स्थान अन्त रहित है; मक्खय अर्थात् जो स्थान क्षय नही होता यानि नाश नहीं होता; मव्वाबाह अर्थात् जो स्थान कर्म जन्म पीड़ा से रहित है अर्थात् जहाँ किसी भी प्रकार की पीड़ा नही होती; मपुणरावित्ति अर्थात् जिस स्थान मे जाने के बाद वापिस ससार में आना नहीं पड़ता—ऐसा सिद्ध गति स्थान अरिहंत भगवान प्राप्त करते है और सिद्ध हो जाते है; सिद्धिगइ नाम धेयं ठाणं सपताणं नमो जिणाणं जय भयाणं अर्थात् ऐसे सिद्ध गति नाम वाले स्थान प्राप्त किए हुए जिनेश्वर देव जिन्होंने भय जीत लिया है उनको नमस्कार हो।

(१०) जे आइआ सिद्धा, जे अभविस्संति णागए काले, संपइअ वट्टमाणा, सव्वे तिविहेण वंदामि :

इस गाथा मे भाव जिनो के साथ द्रव्य जिनो को भी नमस्कार किया गया है। भाव जिन वो होते हैं जो केवलज्ञान प्राप्त करके अरिहंत बनकर समवसरण मे विराजित होते है और द्रव्य जिन वे होते है जो भविष्य मे अरिहत होगे जैसे राजा श्रेणिक।

जे अइआ सिद्धा अर्थात् जो भूतकाल मे सिद्ध हो गए है; जे अभविसंतिणागए काले, अर्थात् जो भविष्य मे सिद्ध होगे; संपइअ वट्टमाणा, अर्थात् वर्तमान समय मे जो ऐसे मनुष्य है जो सिद्ध होंगे; सव्वे तिविहेण वंदामि अर्थात् उन सबको मैं नमस्कार करता हूँ।

ऐसी भावयुक्त वन्दना इन्द्र देव ने अरिहंत भगवान की और हम भी सदैव चैत्यवंदन, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि के बीच मे यह वंदना (नमुत्थुणं सूत्र) का उच्चारण करते हैं। केवल

यदि कही-कहीं कमी रह जाती है तो वह इतनी कि हम बिना अर्थ जाने ही इस वदना का उच्चारण कर देते हैं। तोता कितना ही राम नाम जपे किन्तु वह नहीं जानता कि वह किसका नाम क्यो उच्चारण कर रहा है। अत उसे सिद्ध गति प्राप्त नही होती। इसी प्रकार हम भी यह सब जाने बिना यदि केवल उच्चारण ही करते रहे तो हमे भी सिद्ध गति प्राप्त नहीं हो सकती। हम चाहते हैं कि हमे सिद्ध गति प्राप्त हो। तो फिर हमे चाहिए कि हम न केवल नमुत्थुण ही, बरन् धार्मिक प्रत्येक सूत्र और गाथा जो प्राकृत अथवा सस्कृत मे तो उसका अर्थ समझें और सीखें, और जब तक यह नहीं कर पाएँ तब तक, जब-जब हम किसी धार्मिक सस्कृत या प्राकृत सूत्र अथवा गाथा का किसी भी प्रसग मे उच्चारण करें तब तब प्रत्यक गाथा के साथ ही उसके अर्थ का भी उच्चारण करें। इसी से हम भाव विभोर हो सकेंगे, भगवान के गुणों का अनुमोदन कर सकेंगे, उनके बताए हुए रास्त पर चल सकेंगे और इस प्रकार अपना कल्याण करते हुए अपने मनुष्य जन्म का सार्थक कर एव घाति कर्मो को क्षय कर सिद्ध गति की प्राप्ति कर सकेंगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे इस नम्र निवेदन का अनुमोदन किया जावेगा।

ओम् नमो अरिहंताण।

श्री नमस्कार महामत्र आध्यात्मिक अनुभवो की चावी है। सब साधना की चावियो की जादू की पेटी भी इसे कहा जा सकता है।

(नमस्कार चितामणि—पृष्ठ ८६)

★

आराधना के बाद ही यह सत्य समझ मे आता है कि श्री पचपरमेष्ठी मात्र काल्पनिक भावना नही है परन्तु ऊँची भूमिका म एक परम सत्य है।

(नमस्कार चितामणि—पृ० ८६)

उवसग्गहर स्तोत्र का महात्मय

—मनोहरमल लुनावत

वर्तमान चौबीसी के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर का धर्म शासन इस समय जैन मान्यता के अनुसार चल रहा है। भगवान महावीर २५० वर्ष पूर्व तैइसवे तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ हुये थे। वर्तमान चोबीसी के तीर्थंकरों में उनका नाम तथा प्रभाव सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इस समय भी उनके नाम से अनेकों प्रसिद्ध तीर्थ है जैसे संखेश्वर पार्श्वनाथ, जिरावला पार्श्वनाथ, नाकोडा, पार्श्वनाथ, लुद्रावा पार्श्वनाथ करेडा पार्श्वनाथ आदि यही नहीं इनके स्तोत्र, स्तुति स्तवन आदि भी इतने अधिक प्रचलित है जितने अन्य तीर्थंकरों के नही।

भगवान पार्श्वनाथ सम्बन्धी समस्त स्तोत्रों में उवसग्गहर स्तोत्र सबसे प्राचीन है। इसके रचयिता श्रूत के वली चतुर्दश पूर्वधर आचार्य भद्रवाहु स्वामी थे। इस स्तोत्र की विधिवत आराधना करने वालों को किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता सव प्रकार के उपद्रव-उपसर्ग शान्त हो जाते है और आरोग्य आदि की प्राप्ति होती है।

इस स्तोत्र की रचना के वारे में यह कथा प्रचलित है कि वराहमिहिर और भद्रवाहु दो भाई थे। एक बार प्रतिष्ठानुपुर नगर में युग प्रभावक जैनाचार्य श्री यशोभद्र स्वामी पधारे और उनके उपदेश से दोनों भाइयों को वैराग्य प्राप्त हुआ और दोनों ने अन्त में भागवती दीक्षा ग्रहण की। श्री भद्रवाहुस्वामीं थोड़े ही वर्षो में अपनी कुसाग्र बुद्धी के कारण महान् गीतार्थ हुये। अतः आचार्य यशोभद्रस्वामी ने उन्हें आचार्य पद से सुशोचित कर अपना उत्तराधिकारी घोपित कर दिया। इससे इनके ज्येष्ठ भ्राता वराहमिहर उनसे ईर्ष्या करने लगा और मुनिदीक्षा छोड़ दी। उसने ज्योतिष विद्या में पारंगत हो अपने नगर में काफी प्रतिष्ठा प्राप्त कर अपनी जीविका चलाने लगा। अन्त में वह मर कर व्यंतर हुआ और अपने पिछले भव में भद्रवाहु स्वामी के साथ वैर को जाना और उसी वैर का वदला लेने के लिये चतुर्विध श्री संघ में भयंकर महामारी रोग का उपद्रव फैलाया। इस भयंकर रोग से श्रो संघ मे हाहाकार मच गया। श्री संघ ने इस अशान्त वातावरण को शान्त करने हेतु आचार्य भद्रवाहुस्वामी से प्रार्थना की। और तभी आचार्य भगवन्त ने इस उपद्रव से संघ की रक्षा करने हेतु 'उवसग्गहर स्तोत्र' की रचना की। इस स्तोत्र की विधिपूर्वक साधना करने से शीघ्र ही यह भयंकर रोग निर्मुल हो गया और संघ में सर्वत्र शान्ति हो गई। उसी दिन से इस स्तोत्र का जैन समाज में काफी प्रचार प्रसार हुआ और सप्त-स्मरण और नव स्मरण में भी इसे स्थान दिया गया। पूर्वकाल में इस स्तोत्र की मूल छ गाथायें थी। इससे इस स्तोत्र की आराधना करने वाले के पास आराधना करते समय हरवार पार्श्वनाथ भगवान के अधिनायक देव धरणेन्द्र की कष्ट निवारणार्थ आना पड़ता था। अतः लोग साधारण सी वात पर स्तोत्र की आराधना कर धरेणेन्द्र को बुलाने लगे।

ऐसी स्थिति में धरणेन्द्र ने आचार्य भद्रवाहुस्वामी से प्रार्थना की कि इस स्तोत्र की आराधना करने वाले के पास मुझे उपस्थित होना पड़ता है इसलिये आप कृपया इसकी छटी गाथा गुप्त कर

कीजिये, मैं तो पांच गाथा के द्वारा आराधना करने वाले की भी अवश्य सहायता करूंगा। इस पर आचार्य भद्रबाहुस्वामी ने छठी गाथा गुप्त कर दी तब से इसकी पांच गाथा में ही प्रचलित है।

आज जैन समाज का शायद ही कोई व्यक्ति हो जो इस स्तोत्र के प्रभाव और महात्मय से परिचित न हो। इस युग मे जबकि आज लोग सुख समृद्धि के लिये नाना प्रकार के अनिष्ठ कार्य करने मे लिप्त है, मेरा प्रत्येक जैन धर्मावलम्बी से विनयपूर्वक निवेदन है कि वे प्रतिदिन प्रातकाल उवसग्गहर स्तोत्र की आराधना कर अपना जन्म सफल बनावे। जो व्यक्ति प्रतिदिन इस स्तोत्र का ध्यान करता है और विधिपूर्वक इसका जाप करता है या आराधना करता है वह कभी रोग, शोक आदि किसी भी दु ख स दुखी नही होता, और उसे सब प्रकार की सुख समृद्धि मिलती है।

नवकार का सामर्थ्य

जैसे अनेक उत्तम औषधियो के अर्क के मिश्रण से बनी छोटी सी पुडिया मे रोगनाश की अपार शक्ति होती है, वैसे ही मन्त्रो मे भी पापनाश की कल्पनातीत शक्ति होती है। समस्त शास्त्रो के रहस्य-स्वरूप होने से मन्त्र छोटा होता है, इसलिये उसे आत्मसात् करने मे अधिक अनुकूलता होती है, तथा उसे किसी भी अवस्था मे भी सरलता से गिना जा सकता है और उसके स्मरण से आचार शुद्धि, विचार शुद्धि, योग शुद्धि और अध्यात्म शुद्धि इन चारो की आराधना हो जाती है। समर्थ ज्ञानी पुरुष भी अन्त समय मे मन्त्र मे ही अपना चित्त लगाते हैं। मन्त्र इष्ट देवता का स्मरण रूप है। अर्थ-भावनापूर्वक सतत स्मरण और जाप से धीरे धीरे मन्त्र जिस इष्ट देवता का होता है, उस स्वरूप मे उनका ध्यान करने वाला व्यक्ति भी बनता जाता है और आगे बढते बढते क्रम से वह तन्मय, तद्रूप भी बन जाता है। महामन्त्र नवकार जैन शासन का परम मन्त्र है, तमाम आराधनाओ का यह अन्तिम रहस्य है। नवकार द्वारा समस्त उत्तम आराधना पकड मे आ जाती है। नवकार का पुन पुन स्मरण करने वाला अन्त मे पचपरमेष्ठी स्वरूप बनता है। अथवा नवकार के प्रथम पद स्वरूप "नमो अरिहंताणं" का पुन पुन स्मरण करने वाली आत्मा अन्त मे अरिहंत स्वरूप बनती है। नवकार का सामर्थ्य अद्भुत है वह सर्वाङ्ग शुद्ध महामन्त्र है और दूसरे तमाम महामन्त्र और प्रवर विद्याओ का उत्कृष्ट बीज स्वरूप है।

चित विशुद्धि का मार्ग मैत्र्यादि शुभ भावना

लेखक : मुनिराज श्री जयरत्न विजयजी महाराज

चतस्त्रो भावना धन्या: पुराण पुरुषाश्रिता ।
मैत्र्यादि चिरं चित्ते ध्येया धर्मस्य सिद्धये ।।

धर्मध्यान की सिद्धि के लिए विद्वानों ने जिन चार मैत्र्यादि भावना का आश्रय लिया है,ऐसी शुभ भावना का हृदय में ध्यान धरने योग्य है ।

वर्तमान परिस्थितियों को मद्‌देनजर रखकर अगर विचार किया जाये तो यह जीव न मालूम राग-द्वेष, मोह के वशीभूत होकर क्षण-क्षण में कितने ही कर्मों का उपार्जन कर लेता है । इन कर्मों केबंध को हटाने के लिए बारबार हृदय मे शुभ भावना का संचार हो इसके लिए चिन्तन-मनन जरूरी है । जिनेश्वर देवो ने भव्य जीवों के कल्याण स्वरूप ऐसे-ऐसे तत्वों का, अनुष्ठानो का चित्रण किया है ऐसी स्थिति मे कर्म बंध से मुक्त होने के लिए जो चार भावना—(1) जगत मे रहे हुए समस्त प्राणियों के हित की कामना करना, वह मैत्री । (2) गुणवान, विद्वान को देखकर उनके गुणों का श्रवण कर हृदय में आनन्द होना, वह प्रमोद । (3) दीन-दु:खी प्राणी को देख उनके दु:ख दूर करने का उपाय वह कारुण्य । (4) परिस्थितियों के वशीभूत होकर कार्य करने की उपेक्षा करना, वह माध्यस्थ भावना ।

इन चार शुभ भावनाओं से धर्मध्यान का पाया मजबूत होता है । तीर्थंकर देव भी अपने पूर्व भव मे जिस समय शुभ भावना का भावन करते हैं उस समय वे ऐसी तीव्र भावना मे भावित हो जाते हैं कि अगर मेरा वश चले तो इस विश्व मे रहे हुए समस्त जीवों को बोध दे शासन की सेवा में लगा दूं । इसी भावना "सवी जीव करूं शासन रसी" से ही तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन कर लेते हैं । तीर्थंकर नाम कर्म जिस समय उदय में आता है तब कुदरत भी कैसे अनुकूल हो जाती है, जैसे राजा के कोई सेवक सेवा में हाजिर रहकर चाकरी करता है, उसी प्रकार 64 करोड देवता भी उनकी सेवा करने मे लालायित रहते हैं । अतिशयो मे युक्त, गम्भीर मालकोश की मधुर राग मे जिस समय देशना देते है उनकी आवाज सुन जिस प्रकार सूर्य के उदय से अन्धकार का नाश होता है, उसी प्रकार भव्य जीवो के हृदय मे रहा हुग्रा अज्ञान रूपी ग्रन्धकार हट जाता है । यह सर्व भावना से ही उपलब्ध हो सकता है । चित्त में संक्लेष दु:ख हो तो वह ग्रशुभ कर्मो के लिए है । जैसे समुद्र में रहे हुए बड़े-बड़े मगरमच्छों की आंख की पलकों के समीप चावल के समान तंदुलीया मत्स्य अशुभ भावना मे भरकर सातवी नरक मे जाता है । मम्मण सेठ के जीव ने भी उदात्त भाव मे दान दिया, परन्तु थोड़े से स्वाद के खातिर ग्रनुमोदना के बजाय पश्चाताप किया । दान के प्रभाव से धन संपत्ति की प्राप्ति तो हुई लेकिन उसका उपभोग नही कर सकता । जबकि यही शालीभद्र के जीव ने एक थाली खीर का उत्कृष्ट भावना से दान दिया उसकी तीव्र अनुमोदना कर 99 करोड़ सोनैया का मालिक बना ग्रौर एक ही शब्द माता के कहने से उसकी आतमा को जगा दिया । श्रेणिक हमारा मालिक यानी मगध देश का स्वामी । फिर क्या था यह सुनते ही सुषुप्त आतमा जाग उठी, विचारो के चक्कर में चढ़

गये कि मैंने पूव भव मे पुण्य करने की कसर रखी इसलिए मेरे पर मालिक हुए। अब ऐसा पुण्य उपाजन कर कि मर पर कोई भी मालिक नही होवे। अब महावीरदेव को अपना मालिक, स्वामी बनाऊँ उनके चरणा म आत्म-समर्पण कर दूँ। ससार रूपी समुद्र से पार कराने मे वे ही समर्थ हैं। अब नहीं चाहिये यह महल, धन दौलत, नही चाहिये यह देवांगनाओ तुल्य रमणियाँ। इनके राग मे मोह के वशीभूत होकर सब भूल गया। इस प्रकार का विचार करते हैं, उसी समय धन्नाजी की ललकार "तू कायर है, दीक्षा लेनी है तो एक एक का क्या त्याग करता है, नीचे आजा। इस प्रकार का वाक्य सुनते ही एकदम नीचे उतर आये। वीर चरणों मे जाकर दीक्षा अगीकार की। थोड़े से निमित्त को पाकर जीव कहाँ से कहाँ पहुँच जाते हैं।

इस प्रकार से हमारे हृदय मे भी मैत्र्यादि चार भावना का भावन, महापुरुषो के जीवन से आचरण करने योग्य आचरण करेंगे, शुभ भावनाओ का भावन करेंगे तो अशुभ भावना का आना बन्द होगा ता वह दिन दूर नहीं कि हम भी कर्मों की जजीरों को तोड मोक्ष के सुखो को प्राप्त कर सकें।

॥ शिवमस्तु सव जगत ॥

The effective Bija mantras like Ombar, Hrhimkar and Ashram are the outcome of only Navakar Mantra i e Om Hrhim, Arham etc Bija Mantras have their origin in Navakar Mantra So Navakar Mantra is the fountain source of all the Mantras

(The Universal Welfare Incentation, p 17)

कच्छी भाषा में रचित महावीर बावनी

—अगरचन्द नाहटा, बीकानेर

निर्वाण शतादी के प्रसंग से पूर्व भारत की कई प्रान्तीय बोलियों मे जैन–साहित्य का प्राय: अभाव था, उन भाषा और बोलियो मे भी भगवान महावीर और जैन सम्बन्धी कुछ ग्रन्थ लिखे गये और प्रकाशित हुये। ऐसी बोलियों मे कच्छ[1]–प्रदेश की कच्छी भापा भी एक है जिसमे 'महावीर बावनी' नामक उल्लेखनीय रचना कुछ महीने पहले ही प्रकाशीत हुई है। इसके लेखक है—कच्छी भाषा के महान् साहित्यकार श्री दुलेशयकारावी इस ग्रन्थ को कच्छ देश के मूल निवासी पर अभी बम्बई में रहने वाले श्री केशवलाल मेहता ने प्रकाशित किया है। उन्होने प्रकाशकीय निवेदन में लिखा है कि "देवाधि देव चरम तीर्थकर श्रमण भ० महावीर स्वामी के पच्चीस सौवे निर्वाण महोत्सव के प्रसंग से विश्व भर में और खासकर के भारत मे, अनेक भापाओ मे भ० महावीर सम्बन्धी विपुल परिमाण मे साहित्य-सृजन हुआ है।"

विगत सैकड़ों वर्षों मे भगवान महावीर के विषय में इससे अधिक परिणाम में साहित्य-सृजन हुआ हो, ऐसा जानने में नही आया।

कच्छी भाषा बोलने वाले लगभग दो लाख कच्छी जैन होने पर भी कच्छी भापा मे भगवान महावीर के विपय मे कुछ भी नही लिखा गया, उसके लिए मेरे और मेरे मित्रो के हृदय में बहुत रंज हुआ और अन्त मे यह कार्य अवश्य करने का निर्णय किया गया। कच्छी भापा के सुयोग्य अधिकारी का विचार करते हुए हमारी दृष्टि में कवि दुलेराय काराणी बहुत उपयुक्त लगे। हिन्दी मे जो स्थान सूर तुलसी का है, संस्कृत मे जो स्थान कालिदास का है, गुजराती मे जो स्थान महाकवि नानालाल का है, वही स्थान कच्छी में कवि काराणी का है। लोक साहित्य के महान् सेवक और साहित्यकार श्री मेघाणी ने कहा है कि संजीवन मंत्र द्वारा कवि काराणी ने कच्छी भापा को जीवन्त बना दिया है।

श्री काराणीजी से जब इस कार्य के लिये निवेदन किया गया तो उन्होने कहा कि जो बात तुम्हारे मन मे है वही बात मेरे मन मे भी है और जो कार्य आप कराना चाहते है, वह तैयार भी है। इससे कच्छी भाषी जैन बन्धुओं के आनन्द का पार नही रहा और श्री दुलेराय काराणी द्वारा रचित 'महावीर बावनी' नामक महावीर सम्बन्धी ग्रन्थ को भावार्थ के साथ प्रकाशित किया। गुजराती लिपि मे यह १०८ पृष्ठों की पुस्तक है, इसमें ५२ पद्य व प्रसंग है, जिनमें महावीर की जीवनी और

---

१. तेरापंथी साध्वी प्रमुखा श्री कनकप्रभाजी लिखित वृहद ग्रन्थ–'आचार्य तुलसी दक्षिण के अंचल में' के पृष्ठ ७६ में लिखा है–कच्छ की जनसंख्या आठ लाख है, इसमे लगभग तीन लाख संख्या जैनों की है। इसी ग्रन्थ के पृ० ८४ में कच्छ के जैनो की सख्या सवा लाख लिखी है। ८ लाख में से १। लाख भी उल्लेखनीय है।

वाणी का विवरण कच्छी भाषा मे पहली बार लिखा गया है। मूल पद्य कच्छी भाषा मे है और उसके नीचे भावार्थ गुजराती भाषा म लिखा गया है।

भावनगर के 'जैन' साप्ताहिक पत्र के दिनाक २५–६–६८ के अक मे लिखा है "श्री महावीर जैन चरित्र रत्नाश्रम के पुराने ट्रस्टी श्री दुलेराय काराणी, जिन्होने बहुत वर्षों तक कच्छ मे उपशिक्षा निरीक्षक पद पर काम किया है और बहुत से साहित्य-ग्रन्थो के सृजक हैं, तेरह वर्षों तक उन्होंने चरित्र-रत्नाश्रम सोनगढ के मासिक 'समय धर्म' पत्र का सम्पादन किया है। एक बार पर्युषण पर्व मे 'कल्प-सूत्र' भाषान्तर जैन श्रोताओं को वाँचकर सुनाने की जिम्मेवारी इन पर आ पडी, तब उन्होंने एक भव्य निश्चय किया कि ऐसा अपूर्व पवित्र ग्रन्थ के वाचन का अधिकार जब तक मैं जैन-धर्म को हृदयपूर्वक स्वीकार न कर लू, तब तक मुझे सभा समक्ष इसको वाँचकर सुनाने का अधिकार नही हो सकता। यद्यपि मैं जैन-धर्म का अभ्यासी हू, जैन सिद्धान्तो को जानता हू, पर आज 'कल्पसूत्र' के वाचन का प्रसग उपस्थित हो गया है तो महावीर जैन चरित्र रत्नाश्रम के सस्थापक और सचालक पूज्य कल्याणचन्द्रजी महाराज और सोनगढ के जैन-सघ की उपस्थिति मे मैं जैन-धर्म को स्वीकार करता हुआ अपने को धन्य मानता हू। इस प्रकार मूलत जन्मजात जैन न होने पर भी आपने पूज्य कल्याणचन्द्रजी के सत्सग और कल्प-सूत्र के वाचन के प्रसग मे जैन-धर्म को स्वीकार किया और जैनी बन गये।

आपने गुजराती, हिन्दी और कच्छी तीनों भाषाओं मे नाटक, जीवन-चरित्र, लोक-साहित्य, इतिहास, शब्द-कोष, अनुवाद आदि के रूप मे पचास से अधिक ग्रन्थ लिखे हैं। गुजरात की जनता ने आपका अभिनन्दन भी कुछ समय पहले किया है। अब आप वृद्ध हो चुके हैं और अपने सुपुत्र के साथ अहमदाबाद म रहने लगे हैं। साहित्य-साधना अभी चालू है। कच्छ और लोक-साहित्य के विषय मे तो आप अकेले ने इतना लिखा है कि उतना और किसी ने नही लिखा। हिन्दी मे आपकी 'गाँधी बावनी' और 'दयानन्द बावनी' छप चुकी है और कच्छी भाषा मे महावीर सम्बन्धी एक मात्र ग्रन्थ है जिसका मूल्य ५ रु० है और पता है—केशवलाल मेहता, लालजी पूनसीनो बगलो, देरासर लेन, घाटकोपर, पोस्ट—बम्बई–७७।

One who recites the Navkar Mantra must consider himself as really fortunate That he has the most precious gem like Panch Parmeshthi Namaskar in this beginningless past and endless future, ocean of life

✱

(The Universal Welfare Incantation—P 16)

सुखी जीवन का रहस्य

☐ भंवरलाल वेद

"गृहस्थ को उपद्रवग्रस्त देश एवं नगर का त्याग कर निरुपद्रव एवं शान्त स्थान मे निवास करना चाहिये।" देखने-सुनने में यह बात सामान्य सी प्रतीत होती है परन्तु इसके पीछे जीवन की अनेक समस्याएँ गम्भीरता के साथ जुड़ी हुई है। जिस मोहल्ले, नगर, प्रान्त और देश मे हम निवास करते है वहाँ की स्थिति कैसी है ? अपना निवास चुनते समय संस्कृति, धार्मिक, आचरण व जीवन सुरक्षा आदि की अनुकूलता अवश्य देखनी चाहिये।

आदर्श जनपद :

प्राचीन ग्रन्थों मे ऐसे नगरो और जनपदो का वर्णन आता है जहाँ के राजा अपने देश के जनजीवन की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखते थे। धर्म, संस्कृति और सदाचार की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील रहते थे। देश की प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट, भय और पीड़ा न हो इसके लिये स्वय चिन्तित रहते थे। देश मे किसी प्रकार का अन्याय, उपद्रव और दुराचार न फैले इसके लिये कड़ी निगरानी रखते थे। आदर्श जनपद वह कहलाता है जहाँ न तो चोर व शरावी हो, न कंजूस व कृपण हो, न कोई मूर्ख हो, सभी अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले हो, कोई दुराचारी पुरुष न हो तो फिर दुराचारिणी स्त्री तो होगी ही कहाँ।

हम विचार करे कि क्या यह आदर्श जनपद वर्तमान समय मे कही मिल सकता है उत्तर यथार्थ है, असम्भव है तो हमे कम से कम यह अवश्य देखना चाहिये कि हम जहाँ निवास करते है वहाँ जीवन को कोई खतरा न हो, उपद्रव व अशान्ति का प्रतिपल भय नही हो।

उपद्रव के रूप :

(१) युद्धग्रस्त राज्य

(२) संक्रामक रोगग्रस्त वायुमण्डल

वह धन क्या काम का

पुराने जमाने मे बड़े अपराध पर दो प्रकार के दण्ड दिये जाते थे। कोई भयंकर अपराधी होता तो उसे मृत्यु-दण्ड दिया जाता, जिससे तत्क्षण उसकी मृत्यु हो जाती या फिर उसे कालापानी दिया जाता अर्थात् ऐसे प्रदेश मे अपराधी को भेजा जाता जहाँ के रोगीले जलवायु मे रहकर वह तिलतिल घुटता रहता। जितने दिन अपराधी वहाँ जीवित रहता प्रतिक्षण दण्ड भोगता रहता, अनेक प्रकार के रोगो से, जन्तुओं से उसका शरीर गलता-कटता रहता और बेचारा घुट-घुटकर मर जाता।

तो ऐसे उपद्रवग्रस्त प्रदेशो मे जहाँ परस्पर वैर विरोध चलता हो, रोगग्रस्त जलवायु हो, कौन रहता है ? या तो युद्ध करने वाले सैनिक एवं अपराध का दण्ड भोगने वाले अपराधी अथवा

धनार्थी, जिन्हें धन कमाने का लालच हो, वे ऐसे क्षेत्रो मे जान हथेली पर रखकर भी धन के लिये डटे रहते हैं।

एक सज्जन जो पाकिस्तान मे व्यापार करते है बता रहे थे कि पैसे के लिये स्वास्थ्य और जान का खतरा उठा रहे हैं। एक तो आसाम और बंगाल साइड का पानी ही इतना खराब है कि कभी मलेरिया से पिंड नहीं छूटता, दाद-खाज से दिन-रात परेशान रहते हैं और दूसरे वहाँ पग-पग पर मौत खडी है। किस समय हिन्दू के घर हमला हो जाय, दुकान लूटकर जला दे, पता नहीं। देश मे जाकर जब तक वापिस नहीं आ जाते एक-एक मिनट भय और आशंका मे बीतता है। यह कोई व्यक्ति विशेष की बात नहीं है ऐसा आम होता है।

जब हम ध्यान से सोचते हैं कि मनुष्य धन किसलिए कमाता है? सुख चैन से जीने के लिये, आनन्द के लिये और उसी धन को कमाने के लिये मनुष्य जान से खेलता है, मौत के साये मे सोता है, शरीर और स्वास्थ्य को चौपट कर देता है तो वह धन किस काम आयेगा? राजस्थानी मे एक कहावत है—बिल्ली ने एक बिल मे छिपे हुए चूहे से कहा—

इण बिल ग उन्दरा! इण बिल म आ जाय!

लाख टका दू रोकडा, बैठो बैठो खाय।

अर्थात् भानजा भाई! उस बिल को छोडकर इस बिल मे आ जाओ, इतनी सी मेहनत के लिये तुम्हें लाख रुपये रोकडी दूगी, बस जिन्दगी भर बैठ-बैठकर खाना!

बिल म ही चूहे ने उत्तर दिया—

भू थोडी, भाडो घणो, जीवन जोखा माय!

बिच मे ही गटको हुवै, कहो मासी कुण खाय?

"मौसीजी! इस उदारता के लिये लाख-लाख धन्यवाद है आपको! जो इतनी थोडी सी जमीन का इतना भारी भाडा देने को तैयार हो, इधर से उधर जाने मे तो जान पर ही जोखिम है, बीच मे ही कोई गटका कर जायेगा तो फिर धन किस काम आयेगा।"

मैं सोचता हू उन मनुष्यों की हालत भी उस चूहे की सी है जिसे पैसे के लिये रोज इस बिल से उस बिल मे जाना पडता है और बीच मे मौत की नगी तलवार लटकी रहती है। यदि बीच मे मौत आ गई तो पैसा कौन खायेगा? वह धन क्या काम आयेगा?

जैन धर्म का आदर्श

जैन धर्म का यह आदर्श नहीं है कि चाहे जैसा सकट झेलकर, अन्याय करके, जीवन को जोखिम मे डालकर भी धन कमाओ! वह तो कहता है "धन के बिना गृहस्थ की गाडी नहीं चलती तो कोई बात नहीं, गृहस्थ धन अवश्य कमाये, पर अन्याय से, रात-दिन मौत की छाया मे चलकर, प्रतिक्षण भय, आशंका और पीडा में हाय-हाय करते हुए कमाया हुआ धन किस काम का? शांति से, न्याय नीति से, प्रसन्नता और निर्भयतापूर्वक जो धन मिलता है वही धन, शान्ति और प्रसन्नता दे सकता है। उसी धन से धन कमाने का उद्देश्य सफल हो सकता है।

नियमित जीवनचर्या :

सुखी जीवन का रहस्य जानने के लिये प्रत्येक गृहस्थ को अपनी जीवनचर्या नियमित रखनी चाहिये । इसके लिये निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिये—

१. शुद्ध सात्विक भोजन
२. स्वच्छ जल
३. स्वच्छ शुद्ध वायु और
४. शुद्ध विचार

ये चार ऐसे पदार्थ है जिनका सेवन करने से मनुष्य कभी बीमार नही पड़ता है, कभी दुःख उठाने की मुसीबत झेलने की आवश्यकता नही आती है ।

मारवाड़ी मे एक कहावत है—

ऊंडो सोवे, उनो खावे, पाव कोसू मैदाने जावे ।
चोखो सोचे ठंडो न्हावे, तिण घर वैद कदै न आवे ।।

जो व्यक्ति समय पर सोता है, समय से जागता है, सदा समय पर सादा व गर्म भोजन करता है, घूमने व निपटने के लिये दूर जंगल में जाता है, अच्छा विचार रखता है और ठंडे पानी से नित्य स्नान करता है उसके घर वैद्यजी को कभी जाने की आवश्यकता नही होती है ।

प्रेरणादायक प्रसंग :

एक गाँव मे एक वैद्यजी आये, जब गाँव के सेठजी को मालूम हुआ तो वे उन्हे बुला लाये व अपनी सेठानीजी को बताते हुए कहा—"श्रीमान् ये सदा बीमार रहती है, इनका इलाज करना है ।"

वैद्यजी ने देखा भाला पर सेठानीजी को तो कोई बीमारी नही थी । अच्छा खाना-पीना, आराम से रहना, दिन-भर गद्दी तकियों पर पडे-पडे फूल रही थी । वैद्यजी ने कहा—इनको बीमारी कुछ भी नहीं है सिर्फ चर्बी बढ रही है ।

सेठजी ने कहा—कुछ इलाज बताइये ।

वैद्यराज बोले—सेठानीजी काम क्या करती है ?

सेठजी—काम तो कुछ नही, सिर्फ घर मे बैठे रहती है । रसोई वाली खाना बनाती है, नौकर नौकरानी सब काम कर लेते है । सेठानी को तो पानी पीने के लिये भी उठने की जरूरत नही है ।

वैद्यजी ने कहा—"सेठानीजी ! कुछ मेहनत किया करो ! सुबह मील दो मील घूमने जाओ ! हाथ से झाड़ू लगाओ, पाँच सैर आटा रोज पीसो तब चर्बी कम होगी तो अपने आप तबियत ठीक हो जायेगी ।"

सेठानीजी ने कहा—"वैद्यजी यह तो नही हो सकता, कोई दवा दो जिससे ठीक हो जाये ।"

अब वैद्यजी बेचारे क्या दवा दे मोटापे की तो दवा यही है घूमो-फिरो, मेहनत करो और सादा खाना खाओ । गरिष्ठ मसालेदार भोजन, रात-दिन आराम और बन्द हवा में रहना—बीमारी नही बढ़ेगी तो और क्या होगा ? और जब बीमारी मे सड़ते रहे तो पास में कितना धन हो, कितने ही मकान हों, कारे हों, जीवन का आनन्द कैसे मिलेगा ?

कहते हैं अमेरिका का धन कुबेर हेनरी फोर्ड संसार का सबसे बड़ा रईस और धनी आदमी है। उसने एक बार अपनी मोटर में रास्ते में घूमते हुए मजदूरों को मस्ती के साथ खाना खाते देखा तो वह रो पड़ा। उसने अपनी डायरी में लिखा—काश मैं भी इन मजदूरों की तरह मस्ती से खाना खाता। मैं एक कप चाय भी पूरी नहीं पी सकता रात दिन गोलियाँ खा खाकर जीता हूँ। और ये मजदूर बेफिक्री से मनचाहा खाना खाकर आनन्द ले रहे हैं।

यह आनन्द क्या है? जो हेनरी फोर्ड को तो नहीं मिल सका और उसके मोटर मजदूरों को मिल रहा है? यह है शुद्ध हवा, शुद्ध जल, सादा भोजन और सादे अच्छे विचारों का आनन्द। धन से रोटी मिल सकती है पर भूख नहीं। औषधि मिल सकती है परन्तु स्वास्थ्य नहीं। सुविधाएँ मिल सकती हैं किन्तु आनन्द नहीं।

सुखी और स्वस्थ जीवन का आनन्द तो वही ले सकता है जो शुद्ध हवा, शुद्ध जल, सादा भोजन और पवित्र विचारों में जीवन बिताता है। इसीलिये कहा गया है कि—जहाँ जीवन में ये चारों चीजें सुलभ हों वहीं पर सद्गृहस्थ को रहना चाहिये। वह चाहे गाँव हो अथवा शहर-गृहस्थ वहाँ अपना जीवन बहुत सुखपूर्वक निर्भयता के साथ निर्वाह कर सकता है।

It will be apparently understanding the etymological meaning from the Mahamantra Navakar that it is not confined to any Caste, Colour, Creed, Community, Country or Continent, but it is the universal mahamantra intended for the common cause of universal welfare

(The Universal Welfare Incantation p 10)

हार्दिक श्रद्धांजलि

पिछले छः मास में हमने जैन शासन के ऐसे प्रतिभाशाली, प्रकाण्ड विद्वान महान् आचार्य भगवन्तों को खोया है जिनकी शीघ्र पूर्ति होना असम्भव है। इन आच भगवन्तों में पूज्य आचार्य भगवन्त **विजय प्रताप सूरीश्वरजी म० सा०, आचार्य वि प्रभव चन्द्र सूरीश्वरजी म० सा०, आचार्य विजय धर्म धुरन्धर सूरीश्वर जी म० स आचार्य विजय पूर्णानन्द सूरीश्वरजी म० सा०, आचार्य विजय त्रिलोचन सूरीश्वरजी सा०, उपाध्याय श्री धर्म सागरजी म० सा०, पन्यास चन्दन विजयजी म० सा०** आदि जयपुर का सघ सभी आचार्य भगवन्तों के चरणों में अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि प्रस्तुत कर है और शासन देव से प्रार्थना करता है कि उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

पूज्य उपाध्याय धर्मसागर जी महाराज साहब का जयपुर के श्री संघ पर मह उपकार रहा है क्योंकि आपने ही जयपुर में आयम्बिल शाला की स्थापना कराई थी आज बराबर चल रही है और जिससे प्रतिवर्ष करीब दस हजार भाई-बहिन लाभ ले हैं। अतः जयपुर संघ देववंदन एवं हार्दिक श्रद्धांजलि प्रस्तुत करता है और शासन देव प्रार्थना करते हैं कि उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

परम निर्वाण-क्षेत्र श्रीसम्मेद शिखरजी

—स्वरूपचन्द्र जैन, जबलपुर

वर्तमान युग के २० जैन तीर्थंकरों के निर्वाण क्षेत्र—परम पूज्य सिद्ध क्षेत्र श्री सम्मेद शिखर को कौन नहीं जानता? प्रत्येक जैन नर नारी की हार्दिक अभिलाषा होती है—कम से कम एक बार वहां के दर्शन लाभ अवश्य करें। उनकी यह आकांक्षा स्वाभाविक ही है। यह महान पुण्य भूमि है, पौराणिक मान्यता के अनुसार, एक बार भी भावना सहित वन्दना करने से जीवधारी को फिर कभी नारक या तिर्यंच गति का बंध नहीं होता। इतना ही नहीं, कहा तो यहां तक गया है कि इस उपार्जित पुण्यबन्ध को लाभस्वरूप ४९ भवों के बाद मोक्ष लाभ भी हो जाता है। जब आवागमन के साधन सुलभ थे, तब भी हजारों कोस से पैदल और बैलगाड़ियों पर चलकर श्रद्धालु लोग दर्शनार्थ आते थे और ४-६ माह बाद तक वापिस घर लौट पाते थे। उन दिनों यात्रार्थ जाने वाले यात्री के प्रस्थान के समय उसे भावभीनी विदाई दी जाती थी और उसकी वापिसी के अवसर पर भारी उत्सव मनाया जाता था।

अब आवागमन के साधन बहुत सुलभ और सहज हो गये हैं। रेल और मोटरों द्वारा हर साल देश के कोने कोने से लाखों दर्शनार्थी आकर धर्मलाभ करते हैं। क्षेत्र पर विशाल धर्मशालाएं बन चुकी हैं और पानी-बिजली-डाकघर बैंक तथा पुलिस स्टेशन की भी व्यवस्था हो चुकी है। थोड़े ही समय और खर्च में दर्शनलाभ प्राप्त किया जा सकता है।

किन्तु यात्रियों को अभी भी एक भारी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। मधुबन की धर्मशालाओं तक पहुंचने की व्यवस्था तो ठीक हो चुकी है किन्तु धर्मशाला से तीर्थराज की वन्दना करना (पहाड़ पर चढ़कर वापिस आना) अभी भी प्रायः वैसा ही कष्टसाध्य बना हुआ है। कहने को-एक मोटर मार्ग भी है किन्तु वह वर्ष में कुछ ही दिनों चालू रहता है, और वह भी डाक बंगले तक ही। वहां से भगवान श्री पार्श्वनाथजी की टोंक (सर्वोच्च शिखर) भी काफी दूर रह जाती है और अन्य शिखर तो अछूते ही रह जाते हैं (वहां तो पैदल या डोली द्वारा ही जाना पड़ता है)। रास्ता है भी काफी कठिन—जीप या दूसरी छोटी गाड़ियां ही जा पाती हैं। इतने अधिक यात्रियों के लिए न वहां इतनी गाड़ियां ही मिल पाती हैं और न ही सर्वसाधारण उतना अधिक किराया ही दे पाते हैं।

यह तो गनीमत समझिये कि यह तीर्थराज बिहार जैसे निर्धन प्रान्त में है जहां के गरीब मजदूर तीर्थयात्रियों को कंधों पर लादकर १८ मील की यात्रा करा लाते हैं और वह भी बहुत सस्ती दर पर। अन्यथा खुद चलकर ही यात्रा पूरी करनी पड़ती, तो बहुत थोड़े लोग ही यह पुण्यलाभ कर पाते। और वे डोली गोदी वाले मजदूर भी अभ्यस्त हो चुके हैं, ऊंचे नीचे पथरीले रास्ते पर चलते चलते अब उनके पैर संज्ञाशून्य हो चुके हैं। किन्तु नंगे पैरों पर्वतराज की पूरी वन्दना करने वालों को कितना कष्ट होता है, इसे स्वयं अनुभव किये बिना ठीक-ठीक नहीं समझा जा सकता।

क्षेत्र की बड़ी महिमा है। घने जंगली मार्ग में पचासों बार यात्रियों को नरभक्षी वन्य प्राणियों का सामना करना पड़ा है किन्तु आज तक कभी कोई प्राणघातक दुर्घटना नहीं हुई। पर्वतराज की ऊंचाई ५००० फीट है, संकरीले रास्ते पर चलते-चलते दांये-बाये देखने पर कभी-कभी आँखें घूमने लग जाती हैं, ऐसे दुर्गम मार्ग पर चलना साधारण बात नही है, फिर भी आज तक कभी कोई व्यक्ति फिसलकर नीचे नहीं गिरा। इन पक्तियो का लेखक स्वयं भुक्तभोगी है। नवम्बर का महीना था, मौसम साफ था, किन्तु पहली टोंक पर पहुंचते-पहुंचते ही पानी आने लगा। खूब बारिश हुई। बरसते पानी में ही वन्दना की और शाम तक वापिस लौटा। बरसात के कारण काफी फिसलन हो गयी थी, खासकर उतरते समय, भरपूर सावधानी के बावजूद बीसों बार फिसलकर गिरे, चोट भी लगी, मिट्टी बह जाने के कारण नुकीले पत्थरों से भारी कष्ट हुआ, कई जगह जख्म हो गये, किन्तु हर बार रहे सड़क पर ही। लौटते समय अकेला रह गया था, रास्ता भी याद नहीं था, कहीं किसी गढ्ढे में गिर जाता, तो शायद २-४ दिन बाद ही किसी को पता लग पाता। किन्तु ऐसा आज तक कभी नहीं हुआ, और होगा भी नही। क्षेत्र की बड़ी महिमा है।

पहाड़ पर मनुष्यो का उत्पात अवश्य प्रारम्भ हो गया है, यात्रियों के साथ लूटपाट की घटनाएं होने लगी है जल मन्दिर पर भी डाका पड़ गया। अब इस दृष्टि से सतर्क रहना आवश्यक हो गया है।

एक बात बार-बार मन में उठती रहती है। जैन-समाज के पास धन का अटूट भण्डार है। स्वयं सम्मेद शिखर क्षेत्र में भी भारी आमदनी होती रहती है। पहाड़ के स्थायित्व और अन्य सम्बन्धित मामलों को लेकर परस्पर विरोधी लोगों मे मुकद्मेबाजी चलती आ रही है, इसमें समग्र जैन समाज का करोड़ो रुपया अब तक बरबाद हो चुका है। अपनी कषाय की पुष्टि और स्वामित्व की रक्षा के लिए जी-जान से कोशिश करने वाले और समाज से एकत्रित किये गये चन्दे की रकम को पानी तरह बहाने वाले हमारी समाज के कर्णधार इस ओर ध्यान क्यो नही देते ?

श्री सम्मेद शिखर तीर्थराज से सम्बन्धित सभी पदाधिकारियो का कर्त्तव्य है कि वे किसी भी प्रकार पहाड़ का पैदल रास्ता सुगम बनवा दें और सड़क के किनारे-किनारे पूरे पहाड़ पर बिजली की रोशनी की व्यवस्था करवा दें। स्वयं दर्शन लाभ करने से जितना पुण्यलाभ होता होगा, सर्व-साधारण यात्रियों के लिए यात्रा का मार्ग सुगम और निरापद बनवा देने मे निस्सदेह उससे करोड़ों गुना अधिक पुण्यबन्ध होगा।

क्या सम्बन्धित सज्जनगण इस गम्भीर और आवश्यक कर्त्तव्य की ओर ध्यान देंगे ?

आवरण एवं अनावरण

⊙ घनश्यामल नागोरी 'एम ए बी एड 'साहित्य रत्न'

संसार परिवर्तनशील है। रहन सहन, भाषा, वेश भूषा, रीति रिवाज, परम्पराओं आदि में सदैव परिवर्तन होता रहता है। कभी-कभी साधारण वस्तु विशिष्ट और विशिष्ठ साधारण हो जाती है। यह सब ज्ञानियों की दृष्टि में 'काल' का प्रभाव है। इसलिये जैनदर्शन में 'काल' को भी स्वतन्त्र द्रव्य स्वीकार किया है। समवाय कारणों में काल का भी अपना विशेष महत्त्व है। प्रभु महावीर ने कुम्भकार को जो गोशाले का परम भक्त था, इन्हीं पाँच समवाय कारणों का उपदेश देकर, वस्तु के स्वरूप को समझाकर अपना परम श्रावक बनाया था। बीज बोने पर तुरन्त फल नहीं देता, समय पूरा होने पर फल लगता है। इसी प्रकार भाषा में भी समयानुसार परिवर्तन होता रहता है। कभी अर्थ में तो कभी उच्चारण में। 'आवरण' का प्रयोग पहले शास्त्रीय भाषा तक सीमित था। किन्तु आज उसका प्रयोग विशेष बढ गया है उसका साधारणीकरण हो गया है। आवरण एवं अनावरण लौकिक व्यवहार में खूब प्रयुक्त किए जा रहे हैं।

आवरण का शब्दार्थ है—पर्दा, ढक्कन। 'अनावरण' विपरीतार्थक है। जिसका अर्थ है पर्दा रहित, ढक्कन रहित। आज के युग में 'अनावरण' बहुत सम्मान पा रहा है। कोई भी भक्त, प्रेमी अथवा श्रद्धालु अपने पूज्य व्यक्ति अथवा नेता की तस्वीर लगाकर किसी अच्छे व्यक्ति से अनावरण कराने में अपना गौरव समझता है। पहले वह उसे आवरण सहित करता है और फिर उसका अनावरण कराता है।

प्रश्न है, आवरण युक्त करके अनावरण कराने का। अर्थात् जो अनावरण रहित हो चुका है अथवा आवरण रहित होने का अभ्यास कर रहा है, उसे आवरणयुक्त बनाकर फिर अनावरण करने की एक परम्परा का निर्वाह कर आनन्द मनाता है। क्या ऐसा करना उपयुक्त है? खैर! लौकिक व्यवहार से ऐसा सब कुछ चल रहा है। अनावरण की क्रिया कराने हेतु अच्छा उत्सव किया जाता है। मजमा इकट्ठा किया जाता है। परिचित तथा अपरिचित सबको निमन्त्रित किया जाता है। धार्मिक अथवा सार्वजनिक स्थानों पर उसका महत्त्व बढ़ाया जाता है। स्वयम् प्रसन्न होकर तालियों की गड़गड़ाहट में उसका परिचय देते हैं और सबको प्रसन्नाभिमुख करते हैं।

यह तो रहा एक पक्ष, लेकिन इसका एक दूसरा पक्ष भी है। क्या उस ओर हमारा ध्यान कभी गया है? यदि गया तो कितना, कब व किसका गया। आदि कई प्रश्न हमारे समक्ष उपस्थित हैं।

इसका दूसरा पक्ष आत्मिक-पक्ष है। हमारी इस आत्मा पर अनादि से कर्मों का गाढ़ आवरण पड़ा है। वह आवरण हमें अपना भान नहीं होने देता। फलतः आज भी हम उसी जन्म जरा-मरण के दुःखमय भँवर में गोते खा रहे हैं। हमारी विकट अज्ञानदशावश हमें सही मार्ग नहीं मिल पा रहा है। क्या अपना अनावरण कराना हमारे लिये आवश्यक नहीं।

ज्ञानियों ने स्पष्ट बताया है कि आत्मा से कर्मों का अनावरण कराना तो लौकिक अनावरण से भी अधिक आवश्यक है। यह हमारी कमजोरी समझिए कि हम इस अनावरण को अल्प मात्र भी महत्त्व नहीं दे रहे है। लेकिन यह अनावरण तो आखिर एक दिन कराये ही छुटकारा है।

ऐसे अनेको महापुरुष तो गए जिन्होने अपने आवरण को जाना और पहचाना। पहचान कर उसे दूर करने का पूर्ण प्रयास किया, अभ्यास किया और एक दिन ऐसा आया कि वे सर्वथा आवरण रहित हो गए। निरावरणी हो गए।

तो बन्धुओं! इन पर्व के दिनों में आज हमे उसी अनुरूप आवरण रहित बनने के लिए प्रयत्न करना है, आचरण और अभ्यास करना है। शरीर के जितनी भोजन की आवश्यकता है उतनी आवश्यकता आत्मा के अनावरणी बनने के उपायों की है। स्वाध्याय, जप, तप, ध्यान, पूजनादि क्रियाये–ये आत्मा की खुराक है। कषायों का त्याग, समता का पान आत्मा की खुराक है। यदि हम इन्हें स्वीकारेगे तो आत्मा दिन-प्रतिदिन गुण श्रेणियों पर चढ़ता जायेगा और एक वह सुनहला दिन भी आयेगा कि सर्वथा मल रहित, आवरण रहित होकर अपने ईष्ट स्थान (सिद्धि) पर पहुँच जायेगा। वह ऐसी उच्च स्थिति होगी जहाँ आवरणएवं अनावरण दोनों से ही, इसका कुछ भी सम्बन्ध नही रहेगा। वह शुद्ध बुद्ध स्थिति में होगी।

अत: जहाँ कहीं भी, जब कभी भी आपको अनावरण का फंक्शन एटैण्ड करने का अवसर मिले, आपका ध्यान स्वयम् का अनावरण करने की ओर जायेगा तो उस दिन सही अर्थों में अनावरण हमारे लिए सार्थक होगा, अन्यथा नही। वह तो केवल परम्परा का निर्वाह मात्र होगा।

—o—

It is indisputably agreed that Nature's reign is for ruling the entire Universe systematically, scientifically and mathematically on the lawful ground. Thus, it is the greatest government of all the governments of past, present and future and it can be convinced by subtle observation of her administration of all the sentient and non-sentient beings of the world. So, when manmade government provides all short of royal paraphernalia and equipments in recognition of its representatives like Emperors, Kings, Presidents and Ministers, how then this mighty Government of Nature could neglect her duty to provide the divine paraphernalia to the most bonafide representatives like Arhats, Tirthankaras, Jinas, and Conquerors who have rendered all possible services in preaching and practising the Cosmic Law for the fulfillment of the noble mission of Nature peace and perfection.

जैन समाज का युवक वर्ग : बनाम सुधार

लेखक—टीकमचन्द 'पावटिया', कजोली

भगवान महावीर के अनुयायी तथा जैन धर्म के पुजारी कहलाने वाले जैन बन्धुओ आज हम किधर अन्धकार मे भटक रहे हैं, यह हमें पता नही। किधर हमारी नाव बही चली जा रही है उसका पथ भी हमे मालुम नही। मैं जैन युवक वर्ग की ओर अपना ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ—वह यह है कि हमारा समाज विशेष कर युवा समाज अपने पथ से विचलित होता जा रहा है। वह धर्म के नाम पर अपने को केवल जैन (जैन धर्म मे उत्पन्न) मानता है। उसे जैन धर्म का प्रारंभिक सूत्र 'नमस्कार मन्त्र' तक भी याद नही, अन्य की तो दूसरी बात रही।

जैन धर्म की युवा पीढी मे दुर्व्यसनो का समावेश —

जैन धर्म एक पवित्र धर्म है जिसकी सानी ससार में अन्य कोई धर्म नहीं करता। इतना पवित्र धर्म होते हुए भी इसमे कई दूषित तत्त्वो का भी समावेश हो गया है जो कि नौजवान वर्ग मे देखने को मिलती हैं। आज युवा पीढी अपने शारीरिक, मानसिक व पारिवारिक हित को दृष्टि मे न रखकर नित्यप्रति दुर्व्यसनो के प्रयोग की शिकार होती जा रही है। शादी-विवाहो मे सरेआम शराब, मांस, अडा, आदि का भक्षण होता देखा जाता है। ऐसा क्यो ? भगवान महावीर के पुत्र कहलवाने वालो को उन्होने यह रास्ता तो नही बताया और न ही इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया।

जैन धर्म का युवक वर्ग और दहेज प्रथा —

जैन युवक वर्ग ने ही समाज मे पूर्ण कुरूतियो का सूत्रपान किया है इसमे कोई अतिशयोक्ति नहीं हो सकती। समाज मे जिनके लडके पढ लिख जाते हैं उनके सिर आसमान से बातें करते हैं। दहेज प्रथा भी दिनो दिन अपना जोर पकडती जा रही है। समाज मे इन पढे लिखे व्यक्तियो की तीन श्रेणियां हो गई हैं। पहली श्रेणी मे वे व्यक्ति आते हैं जो ग्यारहवी कक्षा तक पास हैं उनको दस से वीस हजार तक, बी० ए० पास को बीस से तीस हजार तक तथा एम० ए० वाले को तीस से पचास हजार तक दहेज की कोटि मे रखा गया है। जैन धर्म क्या यही बतलाता है कि इस प्रकार से वाणिज्य प्रवृत्ति द्वारा लडको के सौदे किए जाये। इस दूषित प्रवृत्ति से युवा वर्ग अपने आपको बचाये तो अच्छा होगा। क्योकि कल का पता नही ऐसा समय उनके जीवन मे भी आ जाय। हर व्यक्ति [illegible] क्रिया से लाहा लेता हुआ समाज के [illegible] को पार करता हुआ आगे बढ़ता है। अत इस दूषित प्रवृत्ति का हमारे समाज से इस प्रकार का अन्त हो जाना चाहिये जैसे तप्त तवे की बूंद।

युवक वर्ग मे सुधार की आवश्यकता —

युवक वर्ग जबतक अपने जीवन को सयमित व सुसस्कारित नहीं बनायेगा तब तक वह अपने जीवन का उज्जवल नही बना सकता। यदि वह अपने जीवन में सुधार की कामना करे तो उसे

समस्त कुरूतियों व दुर्व्यसनों से अलग होना होगा। शादी-विवाहों में लड़के-लड़कियों का नाच (Dance) नही होवे। क्योंकि यह एक पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति का सूचक है जिसको भारतवासी भी अपनाते जा रहे है। दहेज प्रथा से युवक वर्ग अलग रहे। यदि इन बातों को ध्यान में रखकर कार्य किया जाय तो पहले नीव को सुधारना होगा। नीव पर ही किसी भवन की आधारशिला खड़ी होती है।

स्नेह की भावना :—

सभी जैनी भाई एक है। चाहे वह ओसवाल, पल्लिवाल, पोरवाल, जैसवाल, वीरवाल, खण्डेलवाल आदि क्यो न हो। सभी वीतराग प्रभु के उपासक हैं। फिर भी आपस में वैमनस्य तथा लड़ाई-झगड़े होते हे। ऐसा क्यों? कोई अपने को श्वेताम्बर तो कोई दिगम्बर, कोई स्थानकवासी तो कोई मंदिर मार्गी और तेरापंथी कहता है। हम वीतराग प्रभु के उपदेशो पर चलने वाले एक भाई है। हमको इस प्रकार मिलजुल कर रहना चाहिए जैसे दूध में शक्कर। आपसी द्वेष भावना को अपने हृदय से निकाल देना चाहिये और प्रेम की सरिता बहानी चाहिए तो निश्चय ही हमारा समाज उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है और अन्धकार से मुक्त हो सकता है। कहा भी है—

"भरा नही जो भावों से, बहती जिसमे रसधार नहीं।
हृदय नहीं वह पत्थर है, जिसमे सिंचित प्यार नही॥"

श्री नमस्कार महामन्त्र एक प्रकार की विजली है अथवा वाष्प है, एक प्रकार की अग्नि है अथवा जल है। विजली से जिस प्रकार प्रकाश होता है उसी प्रकार श्रीनमस्कार महामन्त्र के ध्यान से आत्म प्रकाश होता है। वाष्प से जिस प्रकार यन्त्र चलता है उसी तरह श्रीनमस्कार महामन्त्र के जाप से जीवनयंत्र व्यवस्थित रूप से चलता है। अग्नि से जैसे ईंधन जलता है, वैसे श्रीनमस्कार महामन्त्र के स्मरणरूपी अग्नि से पापरूपी ईंधन जलता है। जल से जैसे मैल दूर होता है वैसे श्री नमस्कार महामन्त्र के आराधनारूपी जल से कर्ममैल धुलता है।

मानवता का मधुर फल (जिनभक्ति)

लेखक—आचार्य श्री विजय जयदेवसूरिजी के शिष्यरत्न
विद्वान् मुनिराज श्री यतीन्द्र विजयजी

अनतानन्त प्राणी समूह से व्याप्त ससार में चौरासी लक्ष जीव योनि के माध्यम से प्राणी मात्र भटकता रहता है।

इस परिभ्रमण के अन्तर्गत दुष्कृत्यो का बोझ हल्का होने पर एव सुकृत्यों के प्रभाव से ससारी प्राणी का मानव भव प्राप्त होता है।

रूप यौवन, विषय एव भोग के आकर्षण से मानव अपनी राह से भ्रमित होकर साधना के क्षेत्र म पीछे हो जाता है अत ज्ञानी पुरुषो ने देव-दुर्लभ मानव जीवन की सफलता हेतु वीतरागदेव, निर्ग्रन्थ गुरु एव सर्वज्ञ प्रणीत अहिंसा मूलक धर्मरूप त्रिवेणी की निर्मल जलधारा मे स्नान द्वारा मानव मन को पावन होने की प्रेरणा दी है। इन त्रिवेणी जलधारा म वीतराग परमात्मा की भक्ति रूप पवित्र धारा को अग्रिम स्थान प्राप्त है। प्राणी मात्र को कष्ट पहुँचाने वाले अनादिकालीन जन्म-मरण के बोझ मे भवसमुद्र मे डूबने वाला प्राणी रोग, शोक एव व्याधि के चक्रवातो से जूझता है, जीवन की राह म व्याप्त काटो से बींधाता है, घोर अधेरे में भटकता है, दु ख, दरिद्र एव दुर्भाग्य के बादलो मे छिपता है। इन सारी दु ख दास्तान को चेतन की करुण कथा को भूलने हेतु परम आलम्बन-भूत वास्तविक औषध रूप, सत्य समाधान स्वरूप मानवता का मधुर फल जिनभक्ति ही है।

जिन भक्ति के दो रूप हैं—द्रव्य एव भाव।

जल चन्दन, पुष्प धूप, दीप, अक्षत नैवद्य, फल। इन अष्ट प्रकारो से परमात्मा की पूजा जिनभक्ति का द्रव्य रूप है, अन्तर के अपूर्व भाव के साथ उत्तम द्रव्यो (पदार्थो) का समूह यदि परमात्मा के चरणो मे समर्पित करते है वही द्रव्य भक्ति भाव भक्ति के स्वरूप मे परिणत हो जाती है अत परमात्मा का सच्चा उपासक, पूजक ध्याता अपने ही अन्तर की बीन (वीणा) से वीतराग परमात्मा के दिव्य गुणो की सरगम को छेडता है ससार के कोने कोने मे प्रसारित जिनभक्ति के मधुर गुंजन से व्याप्त सुरावली से आकर्षित भावुक मन रूप सारग (हिरन) परमात्मा के चरणों में सनातन काल तक बैठा रहता है। वह पावन मन जिनभक्ति के रस से आप्लावित हो जाने पर "विषयान्तर सचारो रम्य हाना हलोवम" अन्य विषय विषतुल्य प्रतिभासित होता है। मधुरतम पावनकारी जिनभक्ति ने उपासक को कितना महान् बनाया, यह मात्र न्यायाचार्य श्री "यशोविजयजी महाराज" की सूक्ति सुधा को स्मृति पथ म लाने पर होगा।

"मुक्ति थी अधिक तुज भक्ति मुज मन वसी ।
जेहसुं सबल प्रतिबन्ध लागो ।।
चमक पाषाण जिम लोहने खीचशे ।
मुक्ति ने सहज तुज भक्ति रागो ।"

हे तारक विभु ! मैं न स्वर्ग चाहता हूं न मुझे मुक्ति की अभिलाषा है । मैं सिर्फ आपके चरणों की चाकरी (जिनभक्ति) चाहता हूँ । वैसे ही मेरी मुक्ति तेरी पावन भक्ति से स्वय हो जायेगी । जैसे चुम्बक से लोहे का आकर्षण । इस पंक्ति का सत्यापन (विश्वास) हमें भक्त शिरोमणि दशानन (रावण) के जीवन का दृश्य देखने पर होगा ।

महामहिमावन्त श्री अष्टापद महापर्वत के उत्तुंग शिखरों पर गगनचुम्बी जिन प्रासाद की हारमाला अपूर्व सौन्दर्य की छटा बिखेर रही है । उन धवल प्रासादों मे प्रशान्त मुखमुद्रा से सुशोभित चतुर्दिशति जिन बिम्बों का समूह भावुक मन को लुभा रहा है । भाव भक्ति से परिपूर्ण रावण एवं मंदोदरी का युगल उत्कृष्ट भाव द्वारा द्रव्य पूजा को सानन्द सम्पन्न कर प्रभुस्तवना रूप भाव पूजा में निमग्न है । महामना मदोदरी विविध हावभावो के साथ परमात्मा की संमुख आकर्षक नृत्य मुद्रा मे अन्तर के भाव पुष्पों को समर्पित कर रही है । तीन खण्ड स्वामी रावण ग्राम मूर्च्छना से निर्दोष बीन (वीणा) से गीत संगीत की मधुर सुरावली द्वारा विश्व के कौने-कौने में अपने भाव को मूर्तरूप दे रहा है । हर तान एवं हर ताल से प्रभु की मधुर भक्ति रस धारा के बूंद टपक रहे हैं । आकस्मिक वीणा का तार टूटा, भक्ति एवं नृत्य के संयोग में विक्षेप की सम्भावना उपस्थित हुई, फिर भी पलवार मे अपनी दक्षता से स्वयं के कोमल कर से नाड़ी को खींचकर बीन में जोड़ दी । शरीर की माया को भूलकर भक्ति की साधना में आगे बढ़ा अन्तर के भाव तरंग सीमा को लाँघकर असीम हुए तीन भुवन एवं तीन काल मे दुर्लभ तीर्थंकर नाम कर्म का अपूर्व रत्न द्वारा अन्य प्रमादजन्य संयोग से नरक में बसने के बाद भी आगामी २४ तीर्थंकर युग मे विश्व पूज्य विश्व वन्दनीय परमात्मा होने का सौभाग्य पाकर अजर-अमर हो गया । जिनभक्ति रूप पारस ने लोहा से सोना बनाया । संसार क्षुद्र जन्तु को महान् बनाया । वामन विराट हो गया, यही है महिमा जिनभक्ति की । कथीर से कुन्दन हो गया, ककर से शंकर हो गया । यही है जादू जिनभक्ति का ।

निष्कर्ष यह है कि देवदुर्लभ मानव जीवन का मधुर फलस्वरूप यदि जिनभक्ति की आदर के साथ उपासना की जाती है तो प्राणीमात्र चिर वांछित नरेन्द्र सुरेन्द्र यतीन्द्र समूह से अभीष्ट भक्ति के मंगल मंदिर में विराजित होता है । हमारी प्रार्थना है कि प्रत्येक प्राणी अनन्त ज्ञान दर्शन चारित्र एवं वीर्य रूप आध्यात्मिक लक्ष्मी के कर-कमलों से अजर-अमर अविनाशी जय-विजय की वरमाला को धारण कर विश्व पूज्य हो ।

'रावण पार्श्वनाथ' जिनकी अर्चना लंकापति रावण ने की

लेखक शिखरचन्द पातावत

वैसे तो जैन ग्रन्थों में यह उल्लेख है कि लंकापति रावण श्री पार्श्वनाथ भगवान का परम भक्त था। जैन शास्त्रों के अनुसार रावण व मन्दोदरी रानी श्री पार्श्वनाथ प्रभु की आराधना में तन्मय होकर वीणा बजा रहे थे और नृत्य कर रहे थे, अचानक वीणा का एक तार टूट गया, आराधना में तनिक भी विघ्न न पड़ जाय, रावण बली ने अपनी नस का तार वीणा में पिरो दिया और आराधना जारी रखी। इसी के प्रताप से आवती चौबीसी में तीर्थंकर गोत्र बांध लिया। रावण ने ही रामायण काल में 'उन्नत प्रदेश' नाम से जाने वाले 'रावण देहरा' के नाम से जो स्थान प्रसिद्ध है, अलवर से लगभग ३ मील दूर दक्षिण पश्चिम में अरावली पर्वत माला की निचली तलहटी में जहाँ छोटी छोटी पहाड़ियों में घिरी जगह में अपना मनन चिन्तन केन्द्र स्थापित किया जहाँ महाबली रावण ने भगवान पार्श्वनाथ की अर्चना की थी। हजारों वर्षों पूर्व बनाये गये बावन जिनालय मन्दिर की छवि एक तीर्थ क्षेत्र के समान है हालांकि आज भी यहां के जंगल के नीचे की खुली जमीन को बावन जिनालयों के अवशेष, भग्न खण्डहर बीती हुई सभ्यता के दिलचस्प चिन्हों को उद्घाटित कर रहे हैं और सैलानियों का रावण देहरा क्षेत्र का जम्बूखाना जहाँ सांय-सांय करते जंगल के बीच की ध्वनि मधुर वीणा स्वर को जन्म देती है मन को मोह लेती है। लगभग १५० वर्ष पूर्व रावणदेहरा में प्राप्त पार्श्वनाथ प्रभु की दुर्लभ प्राचीन प्रतिमा जो सफेद संगमरमर की बनी लगभग ४ फुट ऊँची आसन मुद्रा में जिसके चारों ओर देवी देवता नृत्य करते दिखाये गये हैं, ऊपर शेष नाग को नीचे सर्प चिन्ह दिखाया गया है साथ ही मूर्ति के पीछे लिखित भाषा से यह जानकारी मिलती है कि यह मूर्ति रावण पार्श्वनाथ की है, तथा अलवर जैन श्वेताम्बर मन्दिरजी में मूलनायक भगवान के रूप में विराजमान हैं तथा इस मन्दिरजी में विक्रम संवत एक से लेकर सम्प्रति काल की प्रतिमायें दर्शनीय मौजूद हैं। श्री भगवान आदिनाथ, नेमनाथ, विमलनाथ आदि तीर्थंकरों की विशाल प्रतिमायें जिन पर हिन्दी में निरे साफ लेख हैं कि भगवान की प्रतिमा सम्राट अशोक के बेटे सम्प्रति राजा के समय में बनाई गई यह प्रथम मूर्तियाँ है। यहाँ ही एक अन्य अति सुन्दर चमत्कारी प्रतिमा श्री चन्द्र प्रभु भगवान की नील वर्ण है जिस पर भी विक्रम संवत् एक लेख है मन्दिर के इतिहासानुसार य प्रतिमा भी अलवर के दक्षिण में अरावली पहाड़ी के 'रावण देहरा' नामक स्थान से प्राप्त हुई थी जहाँ के बावन जिनालय अवशेष आज भी मौजूद हैं। वहाँ के खण्डहरों को देखकर लगता है कभी जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र रहा होगा। इसी प्रकार शहर के परकोटे की खुदाई में मिट्टी के टीले के नीचे सम्वत १२११ का लिखित मन्दिर जमीन से निकला। विक्रम संवत २००८ में मन्दिर का नवनिर्माण हुआ और यहाँ बड़ी सुन्दर श्री वासुपूज्य भगवान की प्रतिमा सिद्धाचलजी से लाकर प्रतिष्ठित की गई। अलवर वैसे भी श्वेताम्बर दिगाम्बर जैन प्रतिमाओं विशाल मन्दिरों की दृष्टि से काफी सम्पन्न जिला है और इस बात की पुष्टि होती है कि अलवर जैन अतिशय क्षेत्र रहा है। अलवर पुरातत्व विभाग के संग्रहालय में रखी दो तीर्थंकरों की दुर्लभ जैन श्वेताम्बर प्रतिमा भी इसी खुदाई में मिली थी।

अभिलाषा

हरिश्चन्द्र मेहता

हे प्रभो ! हमारे सगति मे सर्वत्र शान्ति का संचार हो। आप प्रत्येक हृदय को ईर्ष्या-द्वेष ी भी भावना से मुक्त करे। आप हमे सहनशीलता तथा निरन्तर प्रयत्न करते रहने की शालीनता ौर क्षमता प्रदान करे। आप हमें दोषियों को अपनाने तथा क्षमा करने की शालीनता प्रदान करें ग्योंकि हम स्वयं सदोष है। आप हमे दूसरो की भूलों को सहर्ष सहन करना सिखायें क्योंकि हम स्वयं भूल करते हैं। हे प्रभो ! आप हमें साहस, आनन्द तथा शान्त मन प्रदान करें। हम शत्रुओं के प्रति सकरूण बने। हम विपत्ति में धीर, कष्ट में स्थिर, क्रोध में संयत और भाग्य के सभी परिवर्तनों के प्रति स्नेही बनें। आप हमे ऐसी शक्ति दें कि हम आप द्वारा निर्धारित मानव जीवन लक्ष्य की पूर्ति में पूर्ण सहयोग दे सके। हे स्वामि! आप हमें ऐसी सीख दें कि हम आपके अनुकूल आपकी सेवा करें, हम किसी को कुछ दें और उसका मूल्यांकन न करे। परिश्रम करें, विश्राम की अपेक्षा न करें कठिनाइयों से जी चुरायें और फल की कामना न करें। आप हमें पाप. दोष, दुर्बलता तथा कष्ट के भय से मुक्त होने की शक्ति प्रदान करें। हे स्वामि ! आप हमें तुच्छ आशाओं, फूहड़ आनन्दों तथा व्यर्थ की कृतज्ञताओं से मुक्त करें। हे प्रभो ! आप प्रत्येक असफल प्राणी पर अपनी कृपा दृष्टि रखें तथा निराशावृत होने से बचायें। आप पथभ्रष्ट की सहायता करे। हमें प्रसन्नतापूर्वक मानवीय कर्त्तव्य निभाने की सामर्थ्य प्रदान करें। हम अपनी धर्मपरायणता तथा सत्य द्वारा शरीर और मन प्रत्येक शक्ति को निष्कपट रख सके जिससे कि स्वच्छ और शिष्ट साधक बन सकें। हमारे मन को इतना निर्मल और विनम्र बनायें कि हमारी, स्वार्थपरता और क्षुद्र प्रयोजन तथा अधम आदर्श मानवीय सच्चे सेवा कार्य को दूषित न कर सके।

आप हमें ऐसा साहस दो कि हम दूसरों द्वारा तिरस्कृत होने पर भी सत्य की रक्षा के लिए सामाजिक कुरीतियों के लिए टक्कर ले सकें। आप हमें ऐसा वरदान दो कि हम आपके सच्चे अनुनायी बन सके।

श्री वर्धमान आयम्बिल शाला, जयपुर

स्थायी मितियों की सूची दिनांक 1-4-77 से 31-3-78 तक

		रुपये
श्रीमान् ताराचन्द जी बाठिया कलकत्ता		501/-
,,	गिरधारीलाल जी मंशालालजी चौधरी	151/-
,,	आशानन्दजी लक्ष्मीचन्दजी भन्साली	151/-
,,	नारायणलालजी पल्लीवाल	151/-
,,	त्रिलोकचन्दजी कोचर	151/-
,,	दीपचंदजी चौरड़िया	151/-
,,	सिद्धराजजी अशोक कुमार जी ढढ्ढा	151/-
,,	राजमलजी सिंधी	151/-
,,	शिखरचन्दजी पालावत	151/-
,,	माणकचन्दजी कोठारी	151/-
,,	के० लाल	151/-
,,	कल्प वृक्ष सी० डी० मेहता	151/-
,,	रमणीकलाल बद्रीलाल शाह राधनपुर	151/-
,,	रतीलाल जुमकलाल राधनपुर	151/-
,,	स्व० मातु श्री चुन्नीबाई हस्ते नैनमलजी जैन वकील जालौर	151/-
,,	इन्दरचन्दजी गोपीचन्दजी चौरड़िया	151/-
,,	रिखबचन्दजी अनुपचन्दजी मोरवाड़ा	151/-
,,	मेहता माहनलाल गुलाबचन्द दवाणा	151-
,,	कान्तीलालजी रानीवाला	151/-
',	दर्शनकुमार सिंघवी नवलखा, कलकत्ता	151/-
,,	नन्दलाल हरिशचन्द्र शाह	151/-

श्री जैन श्वे० तपागच्छ संघ, जयपुर

वार्षिक-कार्य विवरण

सम्वत् 2035 भादवा सुदी

परम पूज्य पन्यास प्रवर श्री न्याय विजयजी महाराज साहेब, श्री विजयजी महाराज साहब, एवम् साधर्मी बन्धुओ व बहिनो—

शासन नायक अन्तिम तीर्थपति भगवान् महावीर स्वामी के जन्म वांचना के अवसर पर कृपालु बन्धुओ के समक्ष श्री जैन श्वे तपागच्छ सघ का वार्षिक काय विवरण, सघ के महासमिति की ओर से मुझे प्रस्तुत करने मे अत्यन्त प्रसन्नता है।

गत वर्ष हमारे यहा पूज्य पन्यास जी महाराज साहब श्री न्यायविजयजी व साध्वीजी श्री राजुला श्री जी, सद्गुणा श्री जी के पावन निश्रा मे चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ। आसोज महा की ओलियों मे सघ की ओर से अठ्ठाई महोत्सव धूम-धाम से मनाया गया। जिन भाई-बहिनों ने इसमे योगदान दिया और धर्म प्रभावना मे वृद्धि की उसके लिए महा समिति आभारी है। चौमासा परिवर्तन का लाभ श्री कपिल भाई व हीराचन्दजी ढढ्ढा ने लिया था।

महाराज साहब की प्रेरणा से दो पुस्तकें 'नवपद आराधना विधि' और 'मनोहर महिमा' 'श्लोक सज्झाय माला प्रकाशित की गई। चातुर्मास के बाद महाराज साहब मण्डावर पधारे। पूज्य साध्वीजी म सा विहार कर शिखरजी पधारे। सघ ने मार्ग की भक्ति की।

सघ भक्ति

इसी वर्ष जयपुर मे यात्रार्थ पधारे हुए बम्बई, बडोदा, उदयपुर, पट्टी आदि नगरों के सघ का स्वागत किया गया।

साधु सध्वियो की भक्ति :

इस वर्ष चालू विहार मे साध्वी श्री हेमेंद्र श्रीजी आदि ठाणा को व मुनिराज श्री मणिभद्र विजयजी यहाँ पधारें। साध्वीजी महाराज का विहार अजमेर की ओर हुआ और मुनिराज का विहार दिल्ली की ओर हुआ। इनके मार्ग की भक्ति का काय सघ की ओर से किया गया।

मन्दिर भक्ति

इस वर्ष मे मण्डावर, जहाजपुर, खिलछीगज, धनोप आदि मे नूतन मन्दिर व वेदी प्रतिष्ठायें सम्पन्न हुई इसमे हमारे यहा से आवश्यक सामान देकर, उचित सहायता की गई। धनोप मन्दिर का ध्वजा दण्ड सघ की ओर से बनाकर धनोप मन्दिर को भेंट किया गया। सरवाड, केकड़ी के मन्दिरो के ध्वजा दण्ड व आभूषण आदि अपनी देख रेख मे तैयार कराये गये।

महा समिति के सामने श्री दत्तवास मन्दिर तथा चन्दलाई मन्दिर की व्यवस्था व जीर्णोद्धार का कार्य का प्रश्न आया। महासमिति ने निर्णय लिया कि दत्तवास मन्दिर की व्यवस्था की

य। चन्दलाई मन्दिर जी की व्यवस्था सुचारू रूप से चल रही है। जीर्णोद्धार के लिए प्रयत्नशील इस हेतु परम पू० पन्यास प्रवर महाराज साहब विशाल विजयजी ने मद्रास संघ की ओर से एक र रुपया सहायतार्थ स्वीकृत कराये है। रकम शीघ्र ही मंगवाकर कार्य जल्दी ही चालू किया गा।

जनता कालोनी के श्री सुपार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर की व्यवस्था भी महासमिति द्वारा लित है। श्री भागचन्द जी छाजेड़ का प्रयत्न है कि यह मन्दिर दर्शनीय व आकर्षक मन्दिर बने। महासमिति के विचाराधीन है।

बरखेड़ा में मन्दिर निर्माण कार्य कराने का प्रश्न पिछले दो वर्ष से विचाराधीन है। इसके महासमिति की राय है कि हमें यह कार्य जल्दी ही सम्पन्न कराना चाहिये।

मन्दिर में आवश्यक जीर्णोद्धार का कार्य हो रहा है। अपूर्ण कार्यो को पूरा करने हेतु महा ति समय-समय पर विचार करती रही है और कार्य होता रहा है।

यह वर्ष अपने जिन मदिर का 250 वा समापन वर्ष है। इसके उपलक्ष्य मे गत वर्ष मणि-का विशेषांक निकाला गया। इसी वर्ष मे महावीर स्वामी के मन्दिर में चित्र तैयार कराये गये। ां वेदियों का कार्य भी सम्पन्न हुआ। मन्दिर मे ऊपर के कक्ष में चार चित्र श्री शखेश्वर पार्श्व-, श्री केसरिया नाथ व श्री आदेश्वर बाबा के तैयार हो गये है। क्षत्रिय कुण्ड व पावापुरी के भी त्र तैयार हुए है। भगवान महावीर स्वामी के बरघोड़े का चित्र भी अति सुन्दर तैयार हुआ है। न-जिन दान दाताओं ने इसमें सहयोग किया है, वे प्रशंसनीय है।

क्षा कार्य :

इस विभाग के अन्तर्गत चलने वाली तीन शाखाऐं है।

1. धार्मिक पाठशाला—इसके हेतु श्री मगल चन्द ग्रुप की ओर से आर्थिक सहायता यथावत् लू है। पहिले जो महिला शिक्षिका श्रीमती कमला बाई धार्मिक शिक्षा देती थी वह तथा गायन द्या के शिक्षक श्री हनुमानजी दोनों ही अस्वस्थता के कारण शिक्षण कार्य करने मे असमर्थ होने श्री धनरूपमलजी नागौरी को शिक्षक नियुक्त किया गया। कुछ समय तो वे इस कार्य को सुचारु प से करते रहे पर अब कुछ निजी कारणों से नही कर पा रहे है। इस प्रकार की शिक्षा देने वाला ोई सुयोग्य व्यक्ति उपलब्ध नही हो रहा है। पूरा प्रयत्न जारी है। यहा पर यह ध्यान दिलाना चित ही होगा कि माता पिता अपने शिशुओं को ऐसी धार्मिक शिक्षा लेने के लोए प्रत्साहित करें।

2. पुस्तकालय—इसका काम सुचारु रूप से चल रहा है। दैनिक, धार्मिक तथा साप्ताहिक त्रों की व्यवस्था है। पुस्तकालय प्रातः तथा सायकाल दोनो समय खुलता है। हमारे यहाँ प्राचीन न्थ, चिकित्सा सम्बन्धी तथा अन्य दुर्लभ पुस्तके उपलब्ध है। आप अवलोकन कर लाभ उठावे। इस वर्ष नई पुस्तके भी खरीदी है। पुस्तकालय के लिये कुछ दानवीरो ने पुस्तके भी दी है। हम उनके आभारी है।

पुस्तकालय के कार्य को योगदान देने व व्यवस्था सुदृढ़ करने हेतु पं० भगवानदासजी साहब ने रोकड़ रु० 2500/- संघ को प्रदान किये हैं। संघ उनका आभारी है। इस राशि को फिक्सड डिपोजिट मे जमा कराया गया है और इससे उत्पन्न ब्याज से प्रतिवर्ष पुस्तके आदि मंगायी जायेगी।

3 उद्योग प्रशिक्षण शाला—इसके माध्यम से 80 बहिनें सिलाई, बुनाई, इत्यादि का शिक्षण प्राप्त कर चुकी हैं और प्रशिक्षण कार्य यथावत् चालू है।

आयम्बिल शाला

इसकी व्यवस्था सुचारु रूप से चालू है। प्रतिवर्ष इससे 16 हजार करीब भाई बहिन आयंबिल का लाभ प्राप्त करते हैं। महगाई के कारण इसमें आर्थिक कठिनाई आती है। आप सभी महानुभावों व देवियों से आग्रह पूर्वक निवेदन है कि आप अधिक से अधिक इस हेतु सहायता प्रदान करें।

आयंबिल शाला की दुकान नं० 53 बापू बाजार, जयपुर में स्थित है। इसी के पीछे की जमीन 1000/रु० देकर ली गई है। आवश्यक निर्माण के पश्चात् मौजूदा किराये में वृद्धि की सम्भावना है।

आर्थिक

संघ की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ है। इस वर्ष का हिसाब आमद, व्यय चार्टर्ड एकाउंटेंट श्री राजेन्द्र कुमार जी चत्तर ने आडिट किया है। संघ उनका सधन्यवाद आभार प्रकट करता है। एक बात के लिए खेद है कि बहुत से महानुभावों ने मन्दिर की, साधारण खाता, आयंबिल व ज्ञान की रकमें बकाया है। यह महान् असाधना का कारण है। आडिटर भी बकाया रकम को प्राप्त करने पर टिप्पणी कर चुके हैं। जिन महोदयों में ऐसी राशि बकाया निकलती है वे कृपया शीघ्र ही जमा करावें। महा समिति आशा करती है कि ऐसी बकाया रकम शीघ्र जमा हो जायेगी।

चातुर्मास व्यवस्था

महा समिति ने इस वर्ष चातुर्मास के लिए साधुजी महाराज अथवा साध्वीजी महाराज को जयपुर चौमासे के लिये विनती करने हेतु—

1—सर्वश्री कपिल भाई के० शाह 2—श्री मनोहरमल जी लूणावत 3—श्री खींवराजजी पारीख 4—श्री मोहनलाल जी चोरडिया 5—श्री रणजीत सिंह जी भण्डारी संघ मंत्री व 6—श्री कस्तूरमल जी शाह अध्यक्ष दोनों पदेन सदस्य।

की एक उप समिति कायम की गई। इस उप समिति की ओर से गोधरा में जैनाचार्य श्री विजय भुवनरत्न सूरिश्वरजी, श्री विजय सूर्योदयसूरिजी, रतलाम में जैनाचार्य विजय मुक्तिचन्द्र सूरिजी, बड़नगर में पूज्य धर्म गुप्त विजयजी, जैनाचार्य विजय भुवनभानु सूरिजी, पिण्डवाड़ा में पूज्य पन्यास प्रवर भद्रंकर विजयजी, आबू रोड में विजय कलापूर्ण सूरिश्वरजी, माउन्ट आबू पर महाराज श्री देवेन्द्र विजयजी, पालीताणा में जैनाचार्य विजय मंगल प्रभ सूरिजी व अरिहंतसिद्ध सूरिजी से सम्पर्क कर विनती की पर कहीं तो पूर्व में ही चौमासे निश्चित हो जाने के कारण तथा कहीं दूरी के कारण, इनमें से कहीं भी हम स्वीकृति नहीं मिली। मेहमाना, सिरोही, अहमदाबाद—इन स्थानों पर भी इसी प्रकार प्रयत्न किये पर कहीं भी मामला नहीं बैठा। इन्हीं दिनों मेरोंगंज में सिद्धचक्र ओली की आराधना कराकर पूज्य पन्यास जी महाराज साहब श्री न्याय विजयजी जयपुर पधारें। आपकी भावना गुरुदेव दर्शन हेतु तपतगड पधारने की थी। ज्येष्ठ वदि 3 को श्रीमती जौनादर बाई व लाड बाई के वर्षीतप का पारणा होना था। महाराज साहब को विनती करके पारणे के दिन के लिए रोका गया। स्टेशन मन्दिर पर पारणा व पूजा सम्पन्न हुई।

इस अवसर पर महाराज साहब को चातुर्मास के लिए विनती की गई जो उन्होंने कृपा कर स्वीकार की । ज्येष्ठ वदि 8 को संघ की ओर से **जैनाचार्य विजय समुद्र सूरिजी** का स्वर्गवास दिवस मनाया गया ।

महाराज साहब के शिष्य श्री **अजीत विजयजी** की दीक्षा पटोदा मे हुई थी–उनकी बड़ी दीक्षा के जोग यहाँ पर प्रारम्भ किये गये । ज्येष्ठ सुदि 10 को मन्दिर के 250 वर्ष के समापन पर श्री कपिलभाई व श्री शिखरचन्दजी पालावत की ओर से पूजा व बड़ी दीक्षा का आयोजन हुआ । श्री हीराचन्द जी एम० चौधरी की ओर से नूतन मुनि श्री को कामली भेंट की । संघ की ओर से अध्यक्ष महोदय ने पन्यासजी महाराज सा० को कामली भेंट की ।

तखतगढ़ से जैनाचार्य विजयपूर्णानन्द सूरिश्वजी महाराज के चिंताजनक बीमारी का तार मिला । यहाँ से प्रतिनिधि मण्डल सुख साता पूछने गया और पन्यास महाराज का पत्र भी ले गया । पन्यास महाराज न्याय विजय जी के लिए जयपुर चौमासे की स्वीकृति प्राप्त हुई । आषाढ़ सुदि एकादशी रविवार को **पन्यास महाराज साहब श्री न्याय विजयजी** आदि का चातुर्मास प्रवेश हुआ ।

अध्यक्ष श्री कस्तूरमलजी शाह ने अपनी अस्वस्थता के कारण महासमिति के प्रस्तावानुसार पर्यूषण व चातुर्मास सम्बन्धी सभी कार्यों को सुचारु रूप से कार्यान्वित करने हेतु एक चातुर्मास समिति का गठन किया ।

इस वर्ष कुछ धर्माचार्यों का काल धर्म हुआ । दुःख है । आचार्य श्री विजय प्रभवचन्द्र सूरिश्वरजी, विजय धर्म धुरन्धर सूरिश्वरजी, विजय पूर्णानन्द सूरिश्वरजी, विजय त्रिलोचन सूरिश्वर जी, उपाध्याय श्री धर्म सागरजी, पन्यास चन्दन विजयजी स्वर्ग सिधारे । जयपुर संघ उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है । यहां की वर्धमान आयंबिलशाला का उपाध्याय धर्म सागरजी महाराज से विशेष सम्बन्ध रहा है । वे इनके प्रेरक थे । ऐसे पूज्य साधुजी महाराज साहबों की कमी जैन शासन मे सदा ही खलती रहेगी ।

महासमिति के पदाधिकारी तथा अन्य सदस्य व संघ के कर्मचारीगण–सभी ने मुझे अपने कार्य मे पूर्ण सहयोग प्रदान किया हैं । प्रत्येक अपना-अपना कार्य सुचारु रूप से देखते रहे हैं और सभी कार्य सुव्यवस्थित ढंग से चल रहे है । मै उनका आभारी हूं ।

सभी बन्धुओं ने इस संघ को समय-समय पर जो सहयोग व आर्थिक सहायता प्रदान कर अर्जित गरिमा को बनायी रखी है । आगे भी पूर्ण आशा है वे अपने इस पुनीत कार्य में तन, मन, धन द्वारा पूरा सहयोग प्रदान करते रहेंगे । उदारता के साथ संघ की सभी संस्था को सुदृढ़ रखेगें तथा धार्मिक कार्यों में भाग लेकर अपनी श्रद्धा का परिचय देते रहेगे ।

रणजीतसिंह भण्डारी

संघ मंत्री

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ

घी वालो का रास्ता, जौहरी बाजार जयपुर-302003

आय व्यय खाता (1-4-77 से 31-3-78 तक)

गत वर्ष की रकम रुपये	व्यय		चालू वर्ष की रकम रुपये	गत वर्ष की रकम रुपये	आय		चालू वर्ष की रकम रुपये
41,531-00	श्री मन्दिरजी खाते		30,604-63	39,697 00	श्री मन्दिर खाते जमा		40,846-92
	आवश्यक खर्च	18,550-69			भेंट खाते	31,877-04	
	विशेष खर्च	12,05[illegible]			पूजन खाते	4,083 62	
					किराया खाते	480-00	
					ब्याज खाते (बैंक से)	4,406 26	
183-00	श्री मणिभद्रजी भंडार खाते		1,350-00	7,947-00	श्री मणीभद्रजी भंडार खाते जमा		8,167-08
33,477 00	श्री साधारण खर्च खाते		30,952-62	35,674-00	श्री साधारण खाते जमा		31,317-70
	आवश्यक खर्च	19,560-73			भेंट खाते व सार्धर्मि भक्ति खाते	15,850-47	
	विशेष खर्च	8,844-49			किराया खाते (बकाया को शामिल करके)	3,804-12	
	मणीभद्र प्रकाशन	2,547-40			मणीभद्र प्रकाशन	2,597-00	
					ब्याज खाते (बैंक से)	9,066-11	

बजट	विवरण		रकम
5,184-00	श्री ज्ञान खर्च खाते		10,927-51
	आवश्यक खर्च	3,232-80	
	विशेष खर्च	7,694-71	
12,640-00	श्री आयम्बिल खर्च खाते		11,675-67
	आवश्यक खर्च	10,541-17	
	विशेष खर्च	1,134-50	
1.098-00	श्री जीवदया खाते		1,035-67
100-00	श्री गुरूदेव खाते		—
	श्री भूलचूक खाता		0-89
10,245-00	श्री बचत आंकड़े के जमा (आय का व्यय पर आधिक्य)		15,681-10
1,04,458-00			1,02,228-09

बजट	विवरण		रकम
8,420-00	श्री ज्ञान खाते जमा		7,263-98
10,229-00	श्री आयम्बिल खाते जमा		13,352-84
	भेंट खाते	7,590-52	
	किराया खाते	2,715-72	
	बर्तन खाते	—	
	ब्याज खाते (बैंक से)	3,046-50	
1,096-00	श्री जीवदया खाते जमा		775-15
439-00	श्री गुरूदेव खाते जमा		164-14
934-00	श्री शासनदेवी खाते जमा		332-23
17-00	श्री सात क्षेत्र खाते जमा		8-15
5-00	श्री भूलचूक खाता		—
1,04,458-00			1,02,228-09

कस्तूरमल शाह
अध्यक्ष

रणजीतसिंह भंडारी
संघ मन्त्री

आत्माचन्द भण्डारी
अर्थ मन्त्री

राजेन्द्रकुमार चत्तर
चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट्स

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ

घी वालो का रास्ता, जौहरी बाजार जयपुर-302003

चिट्ठा (दिनाक 31-3-78 के दिन)

गत वर्ष की रकम रुपये	दायित्व		चालू वर्ष की रकम रुपये	गत वर्ष की रकम रुपये	सम्पत्तियाँ		चालू वर्ष की रकम रुपये
			1,75,556-10	25,748 00	श्री जायदाद खाते (दुकान)		25,748-45
1,59,875-00	सामान्य कोष			1,843 00	श्री अग्रिम खाते		10,867 00
	पिछला शेष	1,59,875 00		25,548,00	श्री उगाई खाते		24,063-80
	जोड़ा गया इस वर्ष की बचत	15,681-10		1,64,618-00	बैंको में जमा		1,84,165-78
49,209-00	श्री स्थायी मिति आयम्बिल खाता				(1) स्थायी जमा खाते		
	पिछला शेष	49,209-00	52,730-00		स्टेट बैंक आफ बीकानेर		
	जोड़ा गया इस वर्ष का जमा	3,521-00			एण्ड जयपुर	64,667-95	
1,511 00	श्री स्थायी मिति जोत खाता		1,661-00		बैंक आफ बड़ौदा में	54,800-00	
2,000-00	श्री बरखेड़ा तीर्थ		2,000 00		देना बैंक में	30,250-00	
1,760 00	श्री सवत्सरी पारणा खाता		1,760-00		(2) चालू खाते जमा		
1,001-00	श्री नवाबजी पारणा कोष खाता		1,001-00		स्टेट बैंक आफ बीकानेर		
3,596-00	श्री श्राविका संघ खाता		7,307-70		एण्ड जयपुर	12,122-53	
—	श्री उदरत खाते जमा		—		रिजर्व बैंक (1000 रुपये		
679-00	श्री रमेशचन्द्रजी भाटिया		678-94		का डिसक्लोजर)	1,000 00	
251-00	श्री सूरजमलजी छीतरमलजी सांड		251-00		(3) सेविंग खाते जमा		
—	श्री स्थायी मिति पान खाते		2,500-00		बैंक आफ बड़ौदा	13 842-78	
—	श्री कल्याण बुक बाईन्डिंग		746-00		बैंक आफ राजस्थान	7,482-52	
—	श्री हरिशंकर पुजारी		28 00	2,125 00	हस्तस्थ रोकड़		1,374-71
2 19,882-00			2,46,219-74	2,19,882-00			2,46,219-74

उपर्युक्त आंकड़े में संस्था की पुरानी चल व अचल सम्पत्ति जैसे-जेवरात, मंदिरजी की पुरानी जायदाद व बर्तन वगैहरा शामिल नहीं है, क्योंकि इनका मूल्यांकन नहीं किया गया है।

कस्तूरमल शाह	रणजीतसिंह भंडारी	आत्मचंद भण्डारी	राजेन्द्रकुमार चत्तर
अध्यक्ष	संघ मन्त्री	अर्थ मन्त्री	चार्टर्ड एकाउन्टेन्टस
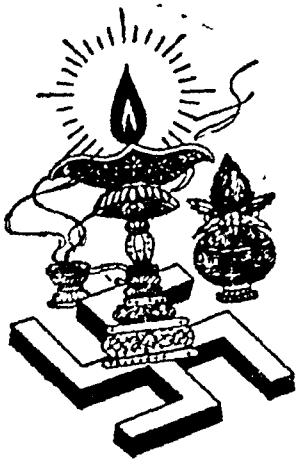
जीवन का आलोक ज्ञान

लेखक :-राजस्थान केसरी
पु० पन्यासप्रवर
श्री मनोहरविजय जी गणिवर्य

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व की प्रतिभा या ओजस्विता उसके शरीर की भव्यता न होकर उसकी बौद्धिकता होती है। बौद्धिक प्रतिभा ज्ञानपर निर्भर होती है।

पांच इन्द्रियों की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति में समानता रहने पर भी जिन व्यक्ति ओकी बौद्धिकता मुखर हो उठी हो उनकी योग्यता शारीरिक भव्यता वाले व्यक्तिओं से अधिक होती है-यह सब जानते हैं।

ज्ञान एक ऐसी शक्ति है जो असंतोष के बादलों को बिखेरकर संतोष सुधा बरसाती है। वर्तमान काल में प्रायः सभी क्षेत्रों में असंतोष का ज्वालामुखी धधक रहा हैं। यदि उन उन क्षेत्रो के असतोष के मूल कारणों तक हम पहुंचेगे तो प्रायः यह ही जानने को मिलेगा कि जिसको लेकर असंतोष भडका है उसके सभी पहलुओं को हमने सही ढग से सोचा नहीं है और नही उसे उचित दृष्टि बिन्दु से देखा है। औचित्य और तथ्यका ज्ञान होते ही असतोष संतोष में बदल सकता है।

ज्ञान को बिना किसी अपेक्षा का ऐश्वर्य कहा है ? आंतर रोगों को हटाने वाला बिना किसी औषधि वाला रसायन ज्ञान है। ज्ञान को अमृत कहा है। पर लौकिक प्रबंधो में जैसे आता है कि देव व दानवोंने मिलकर समुद्र मंथन किया था उसमें से निकले हुए १४ रत्नोंमे अमृत था। जिसे देवता ले गये थे। पर ज्ञान तो बिना समुद्र मंथन का अमृत है। जो शाश्वत अमरता का वरदान है। अणु से हिमालय, नरसे नारायण-बिन्दु से सिन्धु और शुन्य से पूर्ण की उपलब्धि भी ज्ञान की शक्ति का चमत्कार है।

विश्व में समस्याएं और उलझनों की भरमार इतनी भयानक कक्षा तक पहुंची हैं कि मानव का जीवन भयंकर खतरे की सीमा का उल्लंघन कर चुका है। सीमा से काफी आगे बढ चुका है। बात भी ठीक ही है:-जहाँ एक समस्या या उलझन का अंत न हो गया और मामला विचारा धीन हो उसके पहले तो एकाधिक समस्याएं दाये, बाये, आमने, सामने मुंह फाडे खडो होती ही रहती है। यदि सही दृष्टि कोण से देखे तो—

जीवन को बदल दे, जीवन पर प्रभावी सिद्ध हो, अथवा जीवन के तथ्य को उजागर करे ऐसे सत्य ज्ञान का अज्ञान ही प्रमुख कारण है।

ज्ञान का वरदान है। सम्यग् ज्ञानो आत्मा एक श्वासोश्वास मे इतने प्रचुर कर्मों की निर्जरा करती है कि अग्नि ज्यो इन्धन या घास के ढेर को जलाकर राख करदें । खाक बना दें। उसमे पुनर्जलन की शक्ति ही न रहें।

अज्ञानी कोटी कोटी वर्षों तक घोर तपश्चर्या करके जितने कर्मोका क्षय करते हैं उससे असख्य गुण कर्मो को सम्यग् ज्ञानी कुछ ही पल या घडियो मे स्वाध्याय द्वारा क्षय करते हैं। इसका शास्त्र प्रमाण यह है कि कर्म निर्जरा हेतु जिनकल्पकी साधना करने वाले महामुनी दस पूर्व से न्युन ज्ञानी होते हैं। यदि वे दसपुर्वधर वन जाय तो उन्हे जिनकल्प ग्रहण करने की आवश्यकता नही है। क्यो कि- जिनकल्प द्वारा जित्ने कर्मो की निर्जरा या क्षय सभव है उससे अधिक कर्मो की निर्जरा या क्षय दसपूर्वधर गर्हपि दस पूर्व के स्वध्याय द्वारा करते हैं।

सम्यग् ज्ञानी को महान् अभ्यतर तपस्वी कहा है ।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवानो का फरमान है कि–कदाचित सम्यग् ज्ञानी एकात ज्ञान की भी आराधना करले तो भी वह निजगुण रमणता स मुक्ति के मेहमान वन सकते हैं।

प्रख्यात दशवैकालिक सूत्र के रचयिता परमपूजनीय चरण श्रुतकेवली मनकपिता आचार्य भगवत् श्री शय्यभवसूरोश्वरजो महाराजा श्री दशवैकालिक सूत्र मे फरमाते है पढम नाण तओ दया' प्रथम ज्ञान पश्चात् दया। अर्थात् दया भी तभी सफल होगी जबकी वह ज्ञान पूर्वक को हो।

क्रिया को भी ज्ञान का साथ मिले तो ही वह क्रिया सफल होती ह। विना ज्ञान की क्रिया पानी का विलोना या रेत से तले निकालने जैसी है । यही हाल्त विना क्रिया के ज्ञान की है। सम्यग् ज्ञानी कभी भी ज्ञान या क्रिया का अपलाप नही करेगा । सम्यग् ज्ञान व क्रिया का यथायोग्य उपयोग करेगा । वैसे मोक्ष पथ पर अग्रगामो होने वाले रथ के दो प्रमुख पहिये हैं ज्ञान व क्रिया। मोक्ष गगन मे उड्डयन हेतु के दो पख हैं ज्ञान व क्रिया।

सम्यग् ज्ञानी को अनेक विध विशेषताए शास्त्रो मे वताई ह। जिसमेसे अत्यत स्वल्प अ श का ही यहा दिग्दशन करवाया है जैसे सिन्धु के विन्दु का भी अल्पतम विन्दु।

सम्यग् ज्ञान की उपासना के लिए सम्यग् ज्ञान एव सम्यग् ज्ञाना को मैत्रा–भक्ति वैय्यावच्च–वहुमान–आदर-सत्कार एव अर्चना करनो चाहिये । क्यो कि सम्यग् ज्ञान व ज्ञानी के प्रति का समर्पण अपनी हृदयभूमी मे योग्यता के सामर्थ्य को उत्पन्न करता है। और अपना मन वचन काया का सर्वतो भाव से होने वाला समर्पण ही हमारे मे रग व ढग लाता हैं। सम्यग् ज्ञान के साथ साथ सम्यग् ज्ञानी इसलिए वताया कि सम्यग् ज्ञानी व सम्यग् ज्ञानी मे कथचिद् अभेद है।

सम्यग् ज्ञानी सम्यग् ज्ञान के प्रति पूर्णत समर्पित होकर सम्यग् ज्ञान के अध्ययन अध्यापन एव स्वाध्याय मे लयलीन होकर स्वभाव दशा स्वपरिणति मे रमण करके स्वभाव दशा–स्वपरिणति का त्याग करके विपुलकर्म की निजरा करके सम्यग ज्ञान गुण के गुणी वनते हैं। अत सम्यग ज्ञानो की उपासना भी सम्यग ज्ञान की उपासना है।

सम्यग ज्ञान की आराधना द्वारा-मति-श्रुत-अवधि-मनपर्यव एवं केवलज्ञानी की आराधना करते हुए आराधक केवल ज्ञानी बनता है ।

सम्यग् ज्ञानकी आराधना के लिए जैन शासन में पंचमी को (कार्तिक शुक्ला ५) ज्ञानी भगवानों ने फरमाई है। इस ज्ञान पचमी को श्रुतपंचमी या लाभ पंचमी भी कहते है। इस पंचमी की साधना द्वारा ज्ञान-श्रुत का लाभ होने के कारण इसके तीन नाम बताये है।

इस महामगलमय दिन को वर्ष के कतिपय शुभ मुहूर्त दिनो में का एक बिना पूछा सहज सिद्ध शुभ मुहूत दिन भी मानते है। ज्ञानपचमी की आराधना से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता हं एवं जीवन में जमे हुए गाढ तिमिर को भेदकर ज्ञान प्रकाश प्रकट होता हं। इस ज्ञान की सर्वोच्च सीमा एवं ज्ञानावरणीय कर्म के पूर्ण क्षयका परिणाम है पूर्ण केवल ज्ञान की सम्प्राप्ति ।

यों तो ज्ञान पंचमी की आराधना वहा तक करनी चाहिये कि जहा तक केवल ज्ञान प्रकट हो। अतः जोवन भर प्रत्येक पंचमी को आराधना कभी न चूके।

यदि इतना संभव हो न सके तो परिणाम बने रहे एवं संस्कारों को सुदृढ करने हेतु पांच वर्ष व पांच मास तक प्रति शुल्का ५ (उजलो पचमो) को उपवास-प्रभुपूजा-गूरु पूजा ५१ खमासमण ५१ लोगस्का काउस्सग ५१ साथीएँ त्रिकाल देववंदन, दो बार प्रतिक्रमण दोबार पडिलेहण 'ॐ ह्रीँ नमो नाणस्स' पद को २० मालाएँ-ब्रह्चर्यपालन-संथारे पर भूमि शयन, कषायत्याग, चित्तप्रसन्नता भक्ति भाव भरा हृदय इत्यादि पूर्वक की आराधना आराधकों को अवश्य करनी चाहिये। यदि स्थिती न हो तो ५१ की संख्या के स्थान पर, लोकस्स साथीये व खमासमण पांच की संख्या में कर सकते है।

शारीरिक प्रतिकूलता के कारण प्रत्येक मासकी पंचमी की आराधना भी हो न पाये तो कम से कम प्रत्येक वर्ष की कार्त्तिक शुल्का ५ की आराधना तो कभी भी न चूके-कभी भी न भूले।

यह आराधना आराधक आत्मा को कल्याण मार्ग पर अग्रसर करती है। जीवन के अंधकार को दूर करके जीवन को आलोक मय बनातो है।

वैसे भी व्यवहार में यह कहते हुए बहुतों द्वारा सुना है कि-बिना ज्ञान का मानव विना सिंग पूंछ का पशु है ज्ञान हीन जीवन पशु जीवन है। मानव का सही यथार्थ मूल्यांकन ज्ञान से होता है यह निर्विवाद है।

अतः हम सभी से यही आशा करते एवं हमारे हृदय में सभी के प्रतिकी शुभेच्छा भी यह है कि:-

दस दस दृष्टान्तों से दुर्लभ, चिंतामणी रत्न से भी अधिक मुल्यवान एवं जिसके जीवन में उत्पन्न होनेवाली एक पल को जागृतिभो जीवन को बदल सकती हैं ऐसा मानव भव पाने वाले पुण्यवान् भाग्यशाली परम कल्याण मंगल मय एवं जीवन के आलोक सम्यग् ज्ञान को आराधना एवं उपासना करके जीवन को ज्वाल्यमान ज्योतिर्मय बनाये !

★ 卐 ★

मगध, कलिंग आदि देशों में विचरण करते थे तथा वहा की जन भाषा मे ही उपदेश देते थे। हमारे शास्त्र अर्ध मागधी, प्राकृत आदि भाषा मे जन सुविधा को देखते हुए लिखे गये थे। जैसे जैसे साधुओं का मगध आदि से लोप होता गया वहां जैन धर्म के साथ-साथ मागधी आदि भाषा भी हमसे विस्मरण हो गई। शास्त्रों की भाषा का तलस्पर्शी ज्ञान अनेक साधुओं मे नही होने से हम इतर धर्मावलम्बियों के शका का समाधान पूर्णरूप से नही करने के कारण जो अर्थ उन्हें उचित लगता है वह अर्थ लगा लेते हैं। हमारे शास्त्रों के गुढ अर्थ समझने के लिए एव दूसरो के शका का समाधान करने के लिये हमारे साधू साध्वियों को मगध के गाव-गाव म जाकर वहां की मूल भाषा सिखनी पडेगी एव शास्त्रों के शका का समाधान सटिक रूप से देना आवश्यक है। जैन समाज एक सम्पन्न समाज है। वह ऊंची तनखा देकर मागधी के जानकार उच्च शिक्षाविदों की सेवा का लाभ भी ले सकती है। अगर हमारे म हमारे शास्त्रों का अगाध ज्ञान होगा तो उनके शका का समाधान स्वरूप सकडों पुस्तकें हर दृष्टिकोण से समझा कर पश कर सकते हैं।

हमारे शास्त्रों के अध्ययन के लिए ज्ञान के प्रकाश स्थम स्वरुप जैन दर्शन के पडितों को पनपाना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए जैन दर्शन की उंच शिक्षा के लिए विद्यालय खोलना आवश्यक है। उस विद्यालय से जो स्नातक उच्च शिक्षा प्राप्त कर निकलता है उसे सरकारी नौकरी की तरह सुविधा एव उच्च वेतन मिलना चाहिये जिससे मेधावी छात्र जैन दशन के अध्ययन की तरफ आकर्षित हो।

हमारे बालक बालिकाओं में धर्म का ज्ञान अत्यन्त अल्प है तथा दिन दिन उनकी रूचि घटती जाती है। इसके लिए समाज के अग्रगण्य लोग क्षोभ करते हैं परन्तु इसके तह में जाया जावे तो इसकी जिम्मेदारी समाज के नेता वर्ग पर भी पडती है। छोटे बच्चों को धर्म की शिक्षा के लिए आकर्षित करने के लिए समय समय पर इनाम बांटना। ज्यादा पढने वाले को प्रोत्साहन देना। उनके आने जाने का साधन जुटाना। धार्मिक शिक्षा के साथ साथ स्कूल मे जिस विषय मे बालक कमजोर हो उसको भी सुदृढ करना आवश्यक हो जाता है। जिससे बच्चों के अभिभावक भी खुशी-खुशी अपने बच्चों को धार्मिक पाठशाला मे भेजेंगे। इस कार्य के लिए नाम के लालसा वालो की आवश्यकता नहीं है परन्तु कर्मठ कार्यकर्त्ता की आवश्यकता है। बच्चों में धार्मिक शिक्षा एव धार्मिक भावना के लिए उदार हृदय से खर्च करना होगा। जैसे किसी बच्चे ने सामायिक करना सिख लिया तो कम से कम रु० २५) चैत्य-वन्दन सीखने वाले को २५) देवसी व राइसी प्रतिक्रमण सिखने वालो को २००) तथा सवत्सरी प्रति-क्रमण सिखने वालों को कम से कम रु० ५००) का इनाम रखना चाहिये। ये केवल उदाहरण मात्र है। रकम में घटा बढी या सूत्रों का माप भी रक्खा जा सकता है।

इसके साथ-साथ हमारा पुस्तकालय भी समृद्ध होना चाहिये। अगर हमे अपने बच्चों को धर्म की ओर प्रवृत करना है तो नई-नई रोचक पुस्तकें हर साल अपने पुस्तालय में मगानी पडेगी। जिससे हमारे बच्चे गुणवान् एव चरित्रवान् बने। पुस्तकालय के सुचारू रूप से चलाने मे जो बाधायें हो उसका समय समय पर निराकरण करना होगा। इस काय के लिए सम्बन्धित आगेवानों को अपनी जिम्मेदारी निभानी चाहिये। आगेवानों की अक्षमता के कारण हमारी भावी पीढी धार्मिक ज्ञान से वचित रहे यह अक्षम्य है।

आज हमारे समाज मे अगर कोई अनुष्ठान करना हो, सिद्ध चक्र या कोई बडी पुजा पढानी हो, प्रतिष्ठा करानी हो तो कुछ इनेगिने लोग ही इनके जानकार है। बाहर से बुलाना आदि अत्यन्त खर्चिला

हो जाता है । मान लों कही कुछ अशुभ आभाष होता है और छोटे गाँव के साधारण श्रावक शान्ति स्नात्र या सिद्ध चक्र की पूजा कराना चाहते हैं तो खर्चे की वजह से वह कार्य कई वर्षो तक हो भी नहीं पाता है और प्रतिष्ठा तो कभी कभी १०-२० साल भी आगे करानी पड़ जाती है । अगर हमारे में धार्मिक ज्ञान का प्रचार हो, हमारे साधू भगवंत जहां-जहां विहार करते है वहां के श्रावकों को ये विधियां जोर देकर सिखावे तो जिन दोष के निराकरण के लिए उन्हें वर्षो इन्तजार करना पड़ता है वह दोष निवारण अत्यन्त अल्प खर्चे मे वे कर सकते हैं ।

आज जैन समाज मे साधारण खाता जगह जगह कमजोर है । इसके लिए साधू भगवंत अत्यन्त चिंता व्यक्त करते । कई बार देव द्रव्य को ब्याज देकर साधारण खाते की पूर्ति करनी पड़ती है । देव द्रव्य सुदृढ़ है और उसके सबसे बड़ा आय सा स्तोत्र स्वप्नों की बोली है । जब साधारण खाता कमजोर है तो जनता अपनी बुद्धि के अनुसार अपने विचार व्यक्त करती है । जैसे एक विचार धारा के लोग कहते हैं कि स्वप्नजी की बोली देव द्रव्य है । अगर इसका उपयोग साधारण खाते में किया जाता है तो महान पाप के भागी होते हैं । दूसरे विचार धारा वाले कहते हैं कि अगर स्वप्न का घी ५) मन हो और लोगो को यह कह कर कि ७) मन किया गया है और जो २) है वह साधारण खाते में जावेगा तो हर्ज नहीं है । तीसरी विचार धारा के लोग कहते है कि स्वप्न महावीर स्वामी की माता को सांसारिक अवस्था में आये थे । महावीर स्वामी ने जन्म लिया था उस समय समारोह हुआ होगा । उनके घर लोग जिमने भी गये होगे तो देव द्रव्य कैसे हुआ ? इस तरह की अलग–२ मान्यता है परन्तु साधारण खाते को सुदृढ़ करने का अभी कोई ठोस उपाय नहीं मिला है । इस पर चतुर्विध संघ को गभीरता से सोचना आवश्यक है और इसका कारगर उपाय ढुंढा जाना चाहिएं ।

मैंने ये विचार मेरी अल्प बुद्धि के अनुसार व्यक्त किये है । हो सकता है इसमें कई कमियाँ भी होगी परन्तु जो सुझाव उचित लगे उन्हे ग्रहण करे और अनुचित हो वही छोड़ देवे । किसी भी बात का बतंगढ बनाकर बखेडा खड़ा करने की कोशिश नही करेंगे तो वह मेरे उपर पाठकगण का परम उपकार होगा ।

अथ श्रीदादाजी श्रीहीरविजय सूरीश्वरजी की आरती

आरति श्रीगुरुदेव चरण की,
कुमति निवारण सुमत्ति पूरण की ॥आ०॥

पहेली आरती श्रीगुरुदेव की,
दुर्मत्ति निवारण पुन्यकरण की ॥आ०॥१॥

दूसरी आरती धरम घरन की,
अशुभ करम दल दूरी हरण की ॥आ०॥२॥

तीसरी दश यति धरम धरण की,
तप निरमल उद्धार करण की ॥आ०॥३॥

चौथी संयम श्रुत धरम की,
शुद्ध दया रुप धरम वरधण की ॥आ०॥४॥

पाचमी समी सदगुण ग्रहण की,
दिन दिन जस परताप करण की ॥आ०॥५॥

एह विध आरती कीजे गुरुदेव की,
समरण करत भवि पाप हरण की ॥आ०कु०॥६॥

महान पर्वाधिराज पर्यूषण पर्व के शुभ अवसर पर

हार्दिक-अभिनन्दन